समरथ

नवम्बर-दिसम्बर 2009 ◆ नई दिल्ली

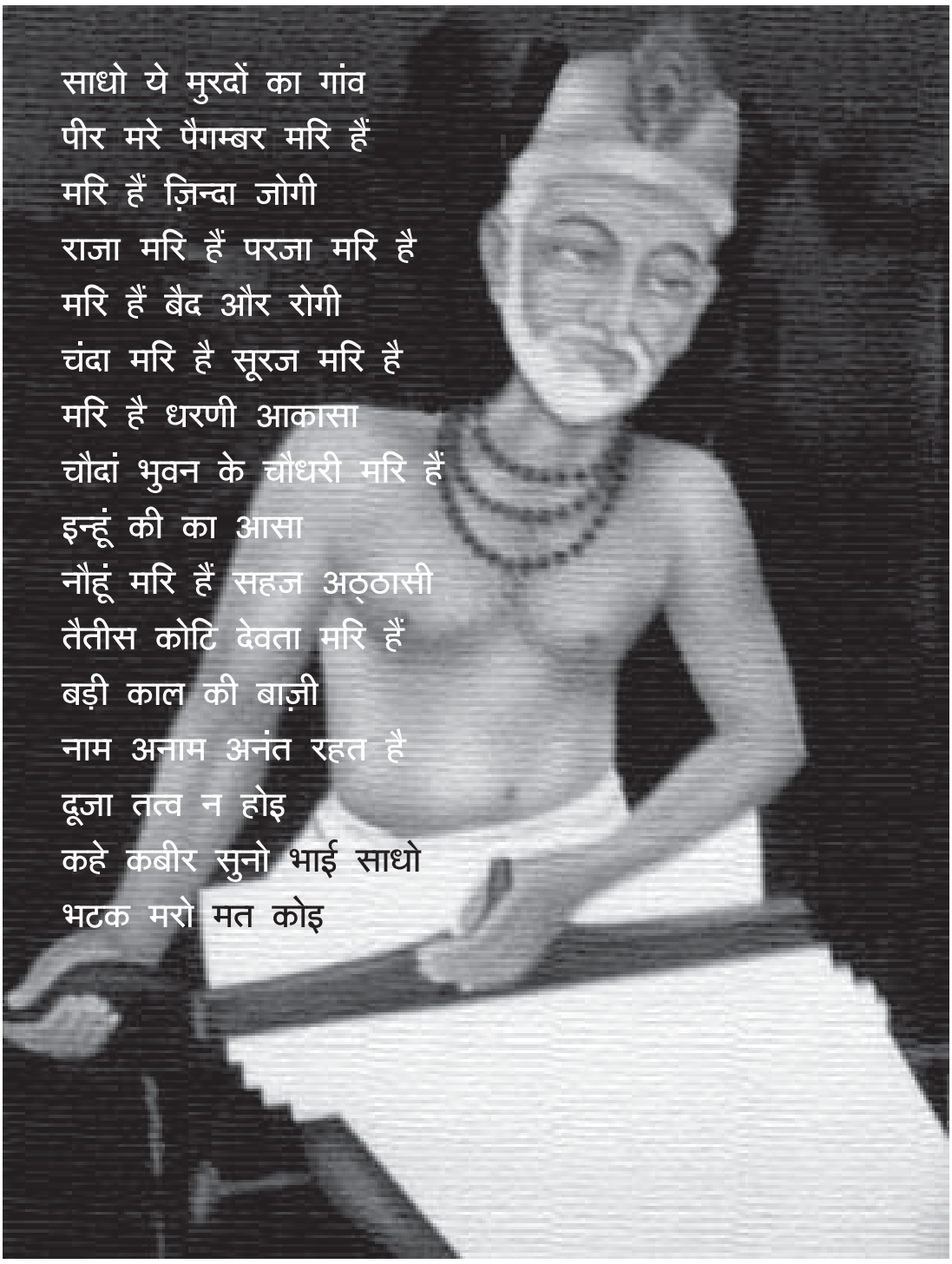

बुल्लेशाह

दादू दयाल

रैदास

नज़ीर

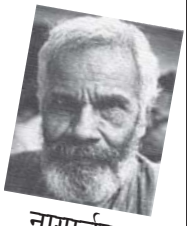
नागार्जुन

निराला

माघ मेला : आम इंसानों के जश्न का प्रतीक

पिछले वर्ष माघ मेला विशेषांक में हमने मुख्यतः भारत की साझी विरासत से संबंधित आलेख छापे थे। प्रस्तुत अंक में हम कविताओं के माध्यम से भारत की साझी विरासत आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। इन कविताओं के साथ-साथ कुछ संतों और कवियों के बारे में जानकारी भी दी जा रही है। इस अंक में बुल्लेशाह, कबीर, नागार्जुन, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, नज़ीर अकबराबादी और मलिक मुहम्मद जायसी की कविताएं शामिल हैं जो कि भारत की सांस्कृतिक विविधता और साझी विरासत का प्रतिबिम्ब हैं। बुल्लेशाह की कविताओं में धार्मिक कट्टरता को चुनौती दी गई और कण-कण में प्रेम के वास की दलीलें पेश की गई हैं। मलिक मुहम्मद जायसी के महाकाव्य पदमावत से 'बारहमासा' का चयन किया गया है। बारहमासा हिंदीभाषी क्षेत्र के लिए लंबे समय से साझी विरासत का प्रतीक रहा है। आज भी बारहमासा आम लोगों की जुबान से उतरा नहीं है। नज़ीर अकबराबादी सांप्रदायिक सद्भाव की बहुत बड़ी मिसाल हैं। पिछले माघ मेला विशेषांक में हमने नज़ीर की कविता 'हरि की तारीफ' का एक छोटा अंश प्रस्तुत किया था। प्रस्तुत अंक में ये कविता पूरे तौर पर और साथ ही नज़ीर की एक अन्य कविता 'जन्म कन्हैया जी' भी प्रस्तुत की जा रही है। यहां ये स्पष्ट कर देना जरूरी है कि आज भी मथुरा के कई मंदिरों में भजन-कीर्तन में नज़ीर की ऐसी बहुत सारी कविताएं गाई जाती हैं।

माघ मेला इलाहाबाद में संपन्न होता है जहां पर गंगा और यमुना का संगम भी होता है। गंगा और यमुना को दो महाकवि किस रूप में याद करते हैं, इसकी भी एक झलक इस अंक में देखने को मिलेगी। निराला की लंबी कविता 'यमुना के प्रति' और नागार्जुन की 'देखना ओ गंगा मइया!' इस अंक में मौजूद है। साथ ही मौजूद है माघ मेले पर कैलाश गौतम की कविता 'अमवसा क मेला'।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति आंदोलन पर जो कुछ लिखा है वह अतुलनीय है। इसीलिए भक्ति परंपरा से संबंधित उनके आलेख इस अंक में मौजूद हैं। कबीर, रैदास और दादू जैसे संत कवि उत्पीड़ित समुदायों की आवाज हैं। उनके बारे में जानकारी आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन के माध्यम से दी गई है।

इस सारी सामग्री को माघ मेले के अवसर पर प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि माघ मेले को केवल एक धार्मिक पर्व के रूप में देखना उचित नहीं है। माघ मेला और इसी प्रकार के अनेक पर्व शताब्दियों से लाखों-करोड़ों लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। इन पर्वों पर तमाम लोग केवल धार्मिक अनुष्ठान के लिए एकत्रित नहीं होते हैं। यह पर्व आम इंसानों के जश्न मनाने का एक साधन भी हैं। दिन-रात एक ही जगह पर लाखों लोगों का जमघट, दो नदियों के सामने इंसानों का समुद्र, संगीतमय माहौल, हर दो कदम पर जलते अलाव, ताज़ा पक रहे खाने की हवा में खुशबू और पूरा ऐसा वातावरण कि मीर का शेर याद आ जाए "इश्क ही इश्क है जिधर देखो सारे आलम में भर रहा है इश्क।" और इस अंक में भी इसी इश्क या प्रेम का संदेश है।

आइए माघ मेले के धार्मिक पक्ष के साथ-साथ इसके सांस्कृतिक पक्ष और शांति और सद्भाव के पहलू का मिलकर जश्न मनाएं।

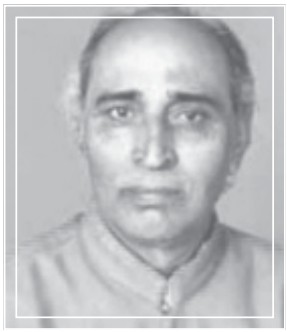

रिमझिम बरसे मेह

अमवसा क मेला

■ कैलाश गौतम

ई भक्ती के रंग में रंगल गाँव देखा
धरम में करम में सनल गाँव देखा
अगल में बगल में सगल गाँव देखा
अमवसा नहाये चलल गाँव देखा।।

एहू हाथे झोरा, ओहू हाथे झोरा
अ कान्हीं पर बेरी, कपारे पर बोरा
अ कमरी में केहू, रजाई में केहू
अ कथरी में केहू, दुलाई में केहू
अ आजी रंगाव्त हई गोड़ देखा
हंसत हउवै बब्बा तनी जोड़ देखा
घुँघटवैसे पूछै पतोहिया कि अइया
गठरिया में अबका रखाई बतइहा
एहर हउवै लुग्गा ओहर हउवै पूड़ी
रमायन के लग्गे हौ मडुवा क ढूँढ़ी
ऊ चाउर अ चिउरा किनारे के ओरी
अ नयका चपलवा अँचारे के ओरी

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

मचल हउवै हल्ला चढ़ावा उतारा
खचाखच भरल रेलगाड़ी निहारा
एहर गुर्री गुर्रा, ओहर लोली लोला
अ बिच्चे में हउवै शराफत से बोला
चपायल हो केहू, दबायल हौ केहू
अ घंटन से उप्पर टंगायल हौ केहू
केहू हक्का बक्का, केहू लाल पीयर
केहू फनफनात हउवै कीरा के नीयर
अ बप्पारे बप्पा, अ दइया रे दइया
तनी हमैं आगे बढे देत्या भइया
मगर केहू दर से टसकले न टसकै
टसकले न टसकै, मसकले न मसकै
छिड़ल हो हिताई नताई क चरचा
पढ़ाई लिखाई कमाई क चरचा
दरोगा क बदली कराबत हौ केहू
अ लग्गी से पानी पियावत हो केहू

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

जेहर देखा ओहरैं बढ़त हउवै मेला
अ सरगे क सीढ़ी चढत हउवै मेला
बड़ी हउवै सांसत न कहले कहाला
मूड़ैमूड़ सगरों न गिनले गिनाला
एही भीड़ में संत गिरहस्त देखा
सबै अपने अपने में हौ व्यस्त देखा
अ टाई में केहू, त टोपी में केहू
अ झूंसी में केहू, अलोपी में केहू
अखाड़न क संगत, अ रंगत ई देखा
बिछल हौ हैजारन क पंगत ई देखा
कहीं रासलीला कहीं परबचन हौ
कहीं गोष्ठी हौ कहीं पर भजन हौ
केहू बुढ़िया माई के कोरा उठावै
अ तिरबेनी मइया में गोता लगावै
कलपबास में घर क चिन्ता लगल हौ
कटल धान खरिहाने वइसै परल हौ

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

गुलब्बन क दुलहिन चलैं धीरे-धीरे
भरल नाव जइसे नदी तीरे तीरे
सजल देह जइसे हो गौने क डोली
हंसी हो बताशा शहद हउवै बोली
अ देखैलीं ठोकर बचावैलीं धक्का
मनै मन छोहारा मनै मन मुनक्का
फुटेहरा नियर मुसकिया मुसकिया के
निहारैलीं मेला सिहा के चिहा के
सबै देवी देवता मनावत चलैलीं
अ नरियर पर नरियर चढ़ावत चलैलीं
किनारे से देखैं इशारे से बोलैं
कहीं गाँठ जोड़ैं कहीं गाँठ खोलैं
बड़े मन से मंदिर में दरसन करैलीं
अ दूधे से शिवजी क अरघा भरैलीं
चढ़ावैं चढ़ावा अ गोठैं शिवाला
छुवल चाहैं पिण्डी लटक नाहीं जाला

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

बहुत दिन पर चम्पा चमेली भेंटइलीं
अ बचपन क दूनों सहेली भेंटइलीं
ई आपन सूनावैं ऊ आपन सुनावैं
दूनों आपन गहना गदेला गिनावै
असों का बनवलू असों का गढ़वलू
तू जीजा क फोटो न अब तक पठवलू
न ई उन्हैं रोकैं न ऊ इन्हैं टोकैं
दूनो अपने दुलहा क तारीफ झोकैं
हमैं अपने सासू क पुतरी तू जान्या
अ हम्मैं ससुर जी क पगरीतू जान्या
शहरियों में पक्की देहतियों में पक्की
चलत हउवै टेम्पो चलत हउवै चक्की
मनैमन जरै अ गड़ै लगलीं दूनों
भयल तू-तू मैं-मैं लड़ै लगलीं दूनो
अ साधू छोड़ावै सिपाही छोड़ावै
अ हलुवाई जइसे कराही छोड़ावैं

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

कलौता के माई क झोरा हेरायल
अ बुद्धू क बड़का कटोरा हेरायल
टिकुलिया क माई टिकुलिया के जोहै
बिजुलिया क भाई बिजुलिया के जोहै
मचल हउवै मेला में सगरों ढुंढ़ाई
चमेला क बाबू चमेला क माई
गुलबिया सभत्तर निहारत चलैले
मुरहुवा मुरहुवा पुकारत चलैले
बिटिउवै पर गुस्सा उतारत चलैले
अ छोटकी बिटिउवा के मारत चलैले
गोबरधन क सरहज किनारे भेंटइलीं
गोबरधन के संगे पउँड़ के नहइलीं
धरे चलता पाहुन दही गुड़ खियाइत
भतीजा भयल हौ भतीजा देखाइत
उहैं फेंक गठरी परइलैं गोबरधन
न फिर फिर देखइलैं धरइलैं गोबरधन

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

केहु शाल सुइटर दुशाला मोलावै
केहू बस अटैची क ताला मोलावै
केहू चायदानी पियाला मोलावै
सोठउरा क केहू मसाला मोलावै
नुमाइस में जातै बदल गइलीं भउजी
अ भइया से आगे निकल गइलीं भउजी
हिंडोला जब आयल मचल गइलीं भउजी
अ देखतै डरामा उछल गइलीं भउजी
अ भइया बेचारू जोड़त हउैं खरचा
भुलइले न भूलै पकउड़ी क मरचा

बिहाने कचहरी कचहरी क चिन्ता
बहिनिया क गौना मसहरी क चिन्ता
फटल हउवै कुरता टुटल हउवै जूता
खलित्ता में खाली केराया क बूता
तबौ पीछे-पीछे चलत जात हउवन
गदोरी में सुरती मलत जात हउवन

अमवसा क मेला अमवसा क मेला
इहै हउवै भइया अमवसा क मेला।।

इशक दी नविओं नवीं बहार

■ बुल्लेशाह

इशक दी नविओं नवीं बहार।
फूक मुसल्ला[1] भन्न[2] सिट्ट लोटा,
ना फड़ तसबी[3] कासा सोटा,
आलिम कैंहदा दे दे होका,
तर्क हलालों खाह मुरदार।
इशक दी नविओं नवीं बहार।
उमर गवाई विच्च मसीती[4],
अन्दर भरिआ नाल पलीती[5],
कदे नमाज़ वहादत ना कीती,
हुण क्यों करना ऐं धाड़ो-धाड़।
इशक दी नविओं नवीं बहार।
जाँ में सबक इशक दा पढ़िआ[6],
मस्जिद कोलों जीऊड़ा[7] डरिआ[8],
भज्ज-भज्ज ठाकुर दुआरे वड़िआ[9],
घर विच्च पाया महिरम यार।
इशक दी नविओं नवीं बहार।
जाँ मैं रमज़[10] इशक दी पाई,
मैनूँ तूती[11] मार गवाई,
अन्दर बाहर होई सफाई,
जित वल्ल वेखाँ यारो यार।
इशक दी नविओं नवीं बहार।
हीर राँझण दे हो गए मेले,
भुल्ली हीर ढुँढेंदी मेले,
राँझण यार बगल विच्च खेले,
मैनूँ सुध बुध रही ना सार।
इश्क दी नविओं नवीं बहार।
वेद कुरानाँ पढ़-पढ़ थक्के,
सिजदे करदिआँ घस गए मत्थे,
ना रब्ब तीरथ ना रब्ब मक्के,
जिन पाया तिन नूर अनवार[12]।
इशक दी नविओं नवीं बहार।
इशक भुलाया सिजदा तेरा,
हुण क्यों ऐवें पावें झेड़ा,
बुल्ला हो रहो चुप्प चुपेड़ा,
चुक्की सगली[13] कूक पुकार।
इशक दी नविओं नवीं बहार।

1., नमाज़ पढ़ने की चटाई या कपड़ा, 2. तोड़, 3. माला (इस्लामी), 4. मस्जिद, 5. गंदगी, 6. पढ़ा, 7. जीव, 8. डरा, 9. प्रविष्ट हुआ, 10. भेद, 11. मैं और तू की भावना, द्वैत भाव, 12. जलवा, 13. हांडी।

साधो किस नूँ कूक सुणावाँ

साधो किस नूँ कूक सुणावाँ,
मेरी बुक्कल दे विच्च चोर।
किते रामदास किते फतह मुहम्मद,
एहो कदीमी शोर।
मुसलमान सड़न तो चिढ़दे,
हिन्दू चिढ़दे गोर[1]।
साधो किस नूँ कूक सुणावाँ।
दोवें आपो विच्च लड़दे भिड़दे,
नित्त नित्त करदे खोर[2]।
चुक गए सभ झगड़े झेड़े,
निकल प्या कोई होर।
साधो किस नूँ कूक सुणावाँ।
जिस ढूँढ़ पाया तिस पाया,
नाहीं झुर झुर होया मोर।
पीर पीराँ बगदाद असाडा,
मुरशद तखत लाहौर।
साधो किस नूँ कूक सुणावाँ।
ओस सी सभ इक्को कोई,
आप गुड्डी आप डोर।
जेहड़ा लेख मत्थे दा लिखेआ,
कौण करे भन्न तोड़।
साधो किस नूँ कूक सुणावाँ।
ओहा आप साईं जिसनूँ भाल लए,
मैनूँ ओसे दी गत ज़ोर।
तुसीं पकड़ लवो ताँ मैं दस्सणाँ हाँ,
बुल्ला शाह दा चुगलीखोर।
साधो किस नूँ कूक सुणावाँ।

1. कब्र, 2. चिड़ना।

कबीरदास

निर्गुण भाव के साधकों में निस्सन्देह कबीरदास प्रमुख और श्रेष्ठ हैं। काशी में किसी सद्योधर्मान्तरित जुलाहा जाति में इनका प्रादुर्भाव हुआ था। प्रसिद्ध यह है कि ये किसी विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। माता ने सामाजिक भय से काशी के लहरतारा तालाब के पास इन्हें फेंक दिया था, वहीं नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने इन्हें प्राप्त किया और पाल-पोसकर बड़ा किया। यह प्रसिद्धि कहां तक सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता। पर निर्विवाद बात यह है कि ये काशी की जुलाहा जाति में पालित और वर्धित हुए थे। यह जुलाहा जाति नाथपन्थी योगियों की शिष्य थी और इस जाति के लोगों में उनके विश्वास और संस्कार पूरी मात्रा में वर्त्तमान थे। मुसलमान ये नाम मात्र के ही थे। इस नाथ-भावापन्न सद्योधर्मान्तरित जुलाहा जाति में पालित होने के कारण कबीरदास में नाथपन्थी विश्वास सहज रूप में वर्त्तमान थे। उनका मन योगियों के संस्कार में सुसंस्कृत था। इसी क्षेत्र में इस काल के श्रेष्ठ गुरु स्वामी रामानन्द द्वारा प्रचारित भक्ति-सिद्धांत का बीज पड़ा। इस प्रकार कबीर में एक ओर यौगिक सिद्धान्तों की पूरी जानकारी है, तो दूसरी ओर भक्ति-साधना की बलदायिनी-प्रेरणा। कबीरदास का जन्म कब हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सम्प्रदाय में माना जाता है कि,

चौदह सौ पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए।।

अर्थात् कबीरदास का जन्म सं. 1455 की ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ था। परन्तु गणना से ज्येष्ठ पूर्णिमा को इस वर्ष सोमवार नहीं पड़ता, 1456 सं. में पड़ता है। इसलिए विद्वानों का विचार है कि कबीरदास का जन्म सं. 1456 अर्थात् 1399 ई. में हुआ था। लोकप्रसिद्धियों में बताया गया है कि अँधेरे में गंगातट पर सोये हुए कबीर के शरीर पर रामानन्दजी के खड़ाऊँ पड़ गये थे और वे 'राम-राम' कह उठे थे। रामानन्द से कबीर के दीक्षा लेने की यही कहानी है। कबीर के मुसलमान शिष्य बताते हैं कि उन्होंने प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख़ तक़ी से दीक्षा ली थी। कबीर के पदों में शेख़ तक़ी का नाम आया है, किन्तु उसमें उस प्रकार की श्रद्धा का भाव नहीं मिलता जो किसी गुरु के लिए अपेक्षित है; जैसे : 'घट-घट है, अबिनासी सुनहु तक़ी तुम शेख।' इस पद्य में कबीर शेख़ तक़ी को गुरुभाव से स्मरण करते नहीं जान पड़ते, किन्तु इसके विरुद्ध कबीर ने जहाँ कहीं भी रामानन्द का नाम लिया है, वहाँ उनका नाम बड़े गौरव और श्रद्धा के साथ लिया है। जैसे :

सतगुरु के परताप ते मिटि गयो सबदुख दंद।
कह कबीर दुविधा मिटी, गुरु मिलिया रामानंद।।

इससे सिद्ध होता है कि कबीर वस्तुतः रामानन्द के शिष्य थे और उन्हीं से उन्हें रामनाम का अपूर्व मन्त्र मिला था।

कबीर की विशेषता : पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर सबसे शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक व्यक्ति थे। संयोग से वे ऐसे युग-सन्धि के समय उत्पन्न हुए थे, जिसे हम विविध धर्म-साधनाओं और मनोभावों का चौराहा कह सकते हैं। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने संस्कार पड़ने के रास्ते हैं, वे प्रायः सभी उनके लिए बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु (अगृहस्थ) नहीं थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे। वे भगवान के नृसिंहावतार की मानो प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति नाना असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन-बिंदु पर अवतीर्ण हुए थे। हिरण्यकश्यपु ने वर मांग लिया था कि उसको मार सकने वाला न मनुष्य हो, न पशु; मारे जाने का समय न दिन हो, न रात; मारे जाने का स्थान न पृथ्वी हो, न आकाश; मार सकने वाला हथियार न धातु का हो, न पाषाण का, इत्यादि। इसीलिए उसे मार सकना एक असम्भव और आश्चर्यजनक व्यापार था। नृसिंह ने इसीलिए नाना कोटियों के मिलन-बिन्दु को चुना था। असम्भव व्यापार के लिए शायद ऐसी ही परस्पर विरोधी कोटियों का मिलन-बिन्दु भगवान को अभीष्ट होता है। कबीरदास ऐसे ही मिलन-बिन्दु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व; जहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा; जहां एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग; जहां से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना; उसी प्रशस्त चौराहे पर वे

खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर-विरुद्ध दिशा में गये मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखायी दे जाते थे। वह कबीरदास का भगवद्दत्त सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग किया।

कबीर के ग्रन्थ : वैसे तो कबीर के नाम पर चलने वाली पुस्तकों की संख्या कई दर्जनों तक पहुँचती है, परन्तु इनमें अधिकांश वस्तुतः कबीर की लिखित नहीं हैं। कबीरदास साक्षर नहीं थे, इसे तो सभी स्वीकार करते हैं। उन्होंने जो कुछ पद लिखे थे, वे दूसरों के संग्रह किये हैं। यह बता सकना कठिन है कि कौन सी रचना उनकी अपनी है और कौन-सी परवर्त्तीकाल के भक्तों का प्रक्षेप। उनकी रचनाओं का कोई भी संग्रह ऐसा नहीं मिला है जिसके बारे में निस्सन्दिग्ध होकर कहा जा सके कि यह उनके समय की रचना है।

कबीर ग्रन्थावली : तीन मूलों से प्राप्त रचनाओं के बारे में प्रामाणिकता का दावा किया गया है। एक तो ना.प्र.स. द्वारा प्रकाशित और श्री श्यामसुन्दरदास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' है, जिसकी आधारभूत प्रति के संबंध में यह दावा किया गया है कि वह कबीरदास की मृत्यु से पन्द्रह वर्ष पहले लिखी जा चुकी थी, अतः वह अत्याधिक प्रामाणिक है। मैंने अपनी 'कबीर' नामक पुस्तक में सिद्ध किया है कि यह दावा गलत है। ना.प्र.स. द्वारा प्रकाशित पुस्तक में उक्त प्रति के अन्तिम पृष्ठ का फोटो दिया गया है। उसमें जो संवत् दिया हुआ है, वह वाद की लिखावट में है। एक बार 'इति श्री कबीर जी की वाणी संपूरन समाप्तः' इत्यादि लिखकर फिर से अपेक्षाकृत मोटी लिखावट में 'संपूर्ण सं. 1561' इत्यादि लिखना क्या सन्देहास्पद नहीं है? पहली बार 'संपूरन और दूसरी बार 'संपूर्ण' लिखना भी संकेतपूर्ण है। पुष्पिका की अन्तिम डेढ़ पंक्तियाँ स्पष्ट ही दूसरे हाथ की लिखावट है। डॉ. श्यामसुन्दरदास ने इस प्रति का नाम 'क' दिया है। एक और प्रति से भी सम्पादन में सहायता ली गयी है। बाबू साहब ने उसका नाम 'ख' दिया है। वह 1881 अर्थात् सन् 1824 ई. की लिखी है।

दोनों प्रतियों में पाठ-भेद बहुत कम है। 'क' प्रति की अपेक्षा 'ख' में 131 दोहे और पाँच पद अधिक हैं। ऐसा जान पड़ता है कि दोनों प्रतियों के लेखनकाल में बहुत अधिक अन्तर नहीं होगा। इसका एक प्रमाण तो यह है कि दोनों पुस्तकों में रमैनी शब्द का व्यवहार है जो बहुत बाद में सन्त-साहित्य में प्रचलित हुआ है। 'ख' प्रति में तो एक ऐसी रमैनी है जिसे 'बीजक' में भी रमैनी नहीं कहा गया। 'बीजक' के प्रसंग में हम इस बात पर विचार करेंगे। यहां प्रकृत यह है कि 'कबीर ग्रन्थावली' की 'क' प्रति 'ख' प्रति से बहुत अधिक पुरानी नहीं है। सम्भवतः यह भी अठारहवीं शती के अन्त्य भाग में संकलित हुई है।

आदिग्रन्थ के पद : यह प्रसिद्ध है कि सं. 1661 अर्थात् 1605 ई. में सिखों के 'गुरुग्रन्थसाहब' का संकलन किया गया था। इसमें कबीर की बहुत-सी वाणियों का संकलन किया गया है। आदिग्रन्थ से इन वाणियों को उद्धृत करके डॉ. रामकुमार वर्मा ने इन्हें अलग से मुद्रित कराया है। इस संग्रह में ऐसे पद जरूर हैं जो सन् 1605 तक कबीर-लिखित माने जाते थे। सम्भवतः कबीर के पदों का सबसे पुराना संग्रह यही है। ग्रन्थसाहब में ही कभी-कभी दूसरे सन्तों के नाम से भी वही पद मिल गये हैं जो कबीर के नाम से संगृहीत हैं। इससे यह सन्देह होता है कि आदिग्रन्थ में संकलित पदों की प्रामाणिकता भी उतनी विश्वसनीय नहीं है। फिर भी प्राचीनता की दृष्टि से इसका सम्मान है।

बीजक : तीसरा संग्रह कबीरपन्थी सम्प्रदाय में समादृत 'बीजक' है। यह सम्प्रदाय में सब-से अधिक मान्य ग्रन्थ है। यह प्रसिद्धि है कि कबीरदास ने स्वयं इस ग्रन्थ को अपने दो शिष्यों जगजीवनदास और भगवानदास को दिया था। भगवानदास द्वारा स्थापित गद्दी इस समय छपरा जिले के धनौती मठ में है। कहा जाता है कि वर्त्तमान 'बीजक' अठारहवीं शताब्दी में धनौती मठ से प्रकाशित हुआ है। पिछले पचास वर्षों से इसकी बहुत चर्चा हुई है और कबीर सम्पदाय के सिद्धान्तों को समझने के लिए इसी ग्रन्थ को प्रमाण माना जाता रहा है। इस पर कई महत्त्वपूर्ण टीकाएँ लिखी गयी हैं जिनमें दो बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। एक तो पूरनदास की लिखी हुई 'तिर्ज्या' टीका, जो पहले-पहल 1892 में प्रकाशित हुई थी और बाद में बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस तथा अन्य कई स्थानों से प्रकाशित हुई, और दूसरी रीवाँ के महाराज विश्वनाथसिंहजू देव की टीका जो प्रथम बार बनारस में छपी थी और बाद में कई जगहों से प्रकाशित होती रही। 'बीजक' की टीकाओं में यह सबसे अधिक पाण्डित्यपूर्ण है, परन्तु इसमें साकेतवासी राम का प्रतिपादन है, अतएव सम्प्रदाय में इसका आदर नहीं है।

रमैनी : 'बीजक' का महत्त्वपूर्ण अंश रमैनियाँ है। इनमें साधारणतः सात-सात चौपाइयों के बाद एक-एक दोहा संकलित किया गया है, जिसे कबीरपन्थी सम्प्रदाय में 'साखी' कहते हैं। इनमें से कुछ रमैनियाँ आदिग्रन्थ में भी मिल जाती हैं, पर उन्हें किसी राग के नाम से ही लिखा गया है। इससे जान पड़ता है कि आदिग्रन्थ के संकलित होने तक 'रमैनी' शब्द का प्रयोग नहीं होता था। ना.प्र.स. की खोज-रिपोर्ट के

अनुसार कबीर-कृत सबसे पुरानी बतायी जानेवाली हस्तलिखित प्रतियाँ चार हैं-- 'कबीरजी के पद', 'कबीरजी की साखी', 'कबीरजी की रमैनी' और 'कबीरजी की कृत'। इनका लिपिकाल सं. 1649 बताया गया है। खोज करने पर डॉ. राजकुमार वर्मा को यह दोनों ही बातें निराधार मालूम हुईं। सभा को इन पुस्तकों का सन्धान जोधपुर से प्राप्त हुआ था। डॉ. वर्मा ने जोधपुर से इन पुस्तकों को मँगाया। उनमें 'कबीरजी की कृत' और 'कबीरजी की रमैनी' तो थी ही नहीं, एक पुस्तक के सिवाय किसी में लिपिकाल भी नहीं दिया गया था। अतः यह अनुमान करने में कोई बाधा नहीं कि 'रमैनी' शब्द का प्रचलन बाद में हुआ। आगे चलकर कबीरपन्थी सम्प्रदाय में दोहे-चौपाइयों में लिखी बातों को 'रमैनी' कहना रूढ़ हो गया। इस प्रकार 'बीजक' में जिसे 'ग्यान चौंतीसा' कहा गया है और आदिग्रन्थ में जिसे 'बावन आखरी' कहा गया है, उसे भी सं. 1881 में लिखी हुई 'कबीर ग्रन्थावली' की 'ख' प्रति में 'रमैनी' कहा गया है। मेरा अनुमान है कि दोहा-चौपाइयों में लिखी गयी तुलसीदास के रामायण के प्रभाव ने कबीरपन्थियों को भी अपनी रामायण बनाने को प्रोत्साहित किया और सन् ई. की अठारहवीं शताब्दी में किसी समय दोहा-चौपाई में लिखित पदों को 'रमैनी' कहा जाने लगा। बाद में चलकर तो कबीरपन्थी साधुओं ने जो कुछ भी लिखा, उसे कबीर-कृत रमैनी मान लिया गया। 'अक्षर-खण्ड की रमैनी' रामरहेस साहब की लिखी हुई है, पर वह भी कबीर के नाम पर चल पड़ी है। इसी प्रकार 'बलख की रमैनी', 'पैज की रमैनी' आदि ऐसी ही रमैनियाँ हैं। इन बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि 'बीजक' का वर्त्तमान रूप अठारहवीं शताब्दी में कभी प्राप्त हुआ होगा। लगभग इसी समय सम्प्रदाय का भी नये सिरे से संघटन हुआ और 'बीजक' ने इस नव-संघटित धर्म-सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थ का काम किया। इसी के बाद इस पर टीकाओं की भी आवश्यकता अनुभूत हुई होगी।

साखी : कबीर की रचनाओं में साखी और शब्द अर्थात् 'दोहे और पद' पर्याप्त पुराने हैं। गोस्वामी तुलसीदास को इस प्रकार की रचनाएँ देखने को मिली थीं। वे 'सांखी सबदी दोहरा' लिखने वालों से बहुत प्रसन्न नहीं थे। 'साखी' शब्द का अर्थ है साक्षी अर्थात् ये वाक्य मानो गुरु के उपदेशों का प्रत्यक्ष रूप हैं। बौद्ध सिद्ध कण्हपा ने 'साखी करब जालन्धर पाएँ' वाले पद में गुरु को साक्षी बनाने की बात कही है। जान पड़ता है कि आगे चलकर गुरु के उपदेशों को ही गुरु को 'साखी' समझा जाने लगा। शुरू-शुरू में गुरु के सभी उपदेशों को- चाहे वे जिस किसी छन्द में लिखे गये हों, 'साखी' कहा जाता होगा। गोस्वामीजी ने 'दोहरा' को 'साखी' से अलग गिनाया है, जिससे दो बातें सूचित होती हैं-- एक तो यह कि सभी दोहों को 'साखी' नहीं कहा जाता था और दूसरे यह कि साखी दोहों से भिन्न छन्द में भी लिखी जाती थी।

'ग्रन्थसाहब' में कबीर की साखियों को 'सलोकु' या 'श्लोक' कहा गया है। 'बीजक' में संगृहीत साखियों का कोई विभाग नहीं है, परन्तु 'कबीर ग्रन्थावली' में इन साखियों को अंगों में विभाजित किया गया है; जैसे 'गुरु को अंग', 'निहकरमी पतिव्रता को अंग' इत्यादि। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि बाद में चलकर साखियों को गुरु का अंग ही मान लिया गया है। कहा जाता है कि दादूदयाल की साखियों को प्रथम बार उनके शिष्य रज्जबजी ने अंगों में विभाजित किया था और तभी से साखियों को अंगों में विभाजित करने की प्रथा चल पड़ी। यदि यह सत्य है कि रज्जबजी के अंग-विभाजन के बाद ही साखियों को अंगों में विभाजित किया जाने लगा, तो 'कबीर ग्रन्थावली' का संकलन-काल भी निश्चय ही रज्जबजी के बाद ही होगा। कबीर की साखियों का विश्लेषण करने से पता चलेगा कि अंगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

शब्द : 'शब्द' वस्तुतः गेय पद हैं। इनकी परम्परा बहुत पुरानी है। बौद्ध और नाथ सिद्धों ने ध्रुवक देकर विभिन्न रागों में पद लिखे थे। कबीरदास के पद उसी परम्परा के हैं। 'बीजक' में जो पद संगृहीत हैं उनमें खण्डन-मण्डन की और ज्ञान की कथनी की प्रवृत्ति अधिक हैं, और 'ग्रन्थसाहब' तथा 'कबीर ग्रन्थावली' में संगृहीत पदों में भक्ति और आत्म-समर्पण के भावों की प्रधानता है। ऐसा जान पड़ता है कि 'बीजक' को सम्प्रदाय का धर्मग्रन्थ बनाने का प्रयत्न अधिक हुआ है, और इसलिए उसके स्वर को ज्ञान-प्रधान और आक्रामक बनाने का प्रयत्न किया गया है। निस्सन्देह कबीरदास में रूढ़ियों, साम्प्रदायिक भावनाओं और निरर्थक बाह्याचारों पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति थी, पर यह उनकी नकारात्मक दृष्टि थी। उनकी वास्तविक देन तो उनकी भक्ति-भावना ही थी।

कबीर का व्यक्तित्व 'बीजक' में कम है : कबीर में एक प्रकार की घर फूँक मस्ती और फक्कड़ाना लापरवाही के भाव मिलते हैं। उनमें अपने-आपके ऊपर अखण्ड विश्वास था। उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान को, अपने गुरु को, अपनी साधना को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखा। वे जब पण्डित या शेख पर आक्रमण करने को उद्यत होते हैं तो उन्हें इस प्रकार पुकारते हैं मानो वे नितान्त नगण्य जीव हों, केवल बाह्याचारों के गट्ठर, केवल कुसंस्कारों के गुड्डे; साधारण

हिन्दू गृहस्थ पर आक्रमण करते समय लापरवाह रहते हैं और इस लापरवाही के कारण ही उनके आक्रमण-मूलक पदों में एक सहज-सरल भाव और एक जीवन्त काव्य मूर्त्तिमान हो उठा है। यही लापरवाही कबीर के व्यंग्यों की जान है। उनके पूर्ववर्त्ती सिद्धों और योगियों ने भी आक्रमणकारी उक्तियाँ कही हैं, पर उनमें उनके मन की हीनता-ग्रन्थि स्पष्ट हो जाती है, मानो वे लोमड़ी के खट्टे अंगूरों की प्रतिध्वनि हों। उनमें तर्क तो है पर लापरवाही नहीं है, आक्रोश तो है पर मस्ती नहीं है; क्योंकि वे बराबर परपक्ष की सम्भावना से चिन्तित रहते थे। कबीरदास के आक्रमणों में जहाँ लापरवाही का कवच है वहाँ आत्मविश्वास का कृपाण भी है। 'कबीर ग्रन्थावली' के पदों और साखियों में यह घरफूँक मस्ती और फक्कड़ाना लापरवाही मिल जाती है; परन्तु 'बीजक' के पदों में वह बहुत कम हो गयी है। इसीलिए भाव की दृष्टि से 'कबीर ग्रन्थावली' के पदों में कबीरदास का मूल रूप अधिक सुरक्षित है। दोनों ही संग्रहों में पायी जाने वाली आक्रमण-मूलक उक्तियों की तुलना करने से ही यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

कबीरदास मुख्य रूप से भक्त थे। वे उन निरर्थक आचारों को व्यर्थ समझते थे, जो असली बात को ढँक देते हैं और झूठी बातों को प्राधान्य दे देते हैं। उनके प्रेम के आदर्श सती और शूर हैं। जो प्रेम या भक्ति पद-पद पर भक्त को भाव-विह्वल कर देती है, मन और बुद्धि का मन्थन करके मनुष्य को परवश बना देती है और जो उन्मत्त भावावेश के द्वारा भक्त को हतचेतन बना देती है, वह कबीर को अभीष्ट नहीं। प्रेम के क्षेत्र में वह गलदश्रु भावुकता को कभी बर्दाश्त नहीं करते। बड़ी चीज का मूल्य भी बड़ा होता है। भगवान्-जैसे प्रेमी को पाने के लिए भी मनुष्य को बड़े-से-बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। और अपने आपा को देने से बढ़कर मनुष्य और कौन सा मूल्य चुका सकता है?

यह तो घरु है प्रेम का, खाला का घरु नाहिं।
सीस उतारे भुईं धरे, सो पइठे इहि माँहि।।

इसी अनाविल आत्म-समर्पण ने कबीर की रचनाओं को श्रेष्ठ काव्य बना दिया है। संसार में जहाँ कहीं भी यह रचना गयी है, वहीं इसने लोगों को प्रभावित किया है। सहज सत्य को सहज ढंग से वर्णन करने में कबीरदास अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। वे मनुष्य-बुद्धि को व्याहत करने वाली सभी वस्तुओं को अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे। पण्डित, शेख, मुनि, पीर, औलिया, कुरान, पुरान, रोज़ा, नमाज़, एकादशी, मन्दिर और मस्जिद उन दिनों मनुष्य चित्त को अभिभूत कर बैठे थे, परन्तु वे कबीरदास का मार्ग न रोक सके। इसीलिए कबीर अपने युग के सबसे बड़े क्रान्तदर्शी थे।

कबीर सम्प्रदाय का साहित्य : यह कह सकना कठिन है कि कबीर सम्प्रदाय का संघटन कब आरम्भ हुआ। कबीरपन्थ की इस समय दो मुख्य शाखाएँ हैं -- कबीरचौरा (बनारस) वाली और छत्तीसगढ़ वाली। दोनों की गुरु-परम्पराएँ उपलब्ध हैं। दोनों का दावा है कि उनके संस्थापक कबीर के साक्षात् शिष्य थे। अब, जहाँ तक कबीरदास का सम्बन्ध है, वे सम्प्रदाय-स्थापना के विरोधी ही थे। उनके पुत्र कमाल से सम्प्रदाय-स्थापन के लिए प्रार्थना की गयी थी, पर उन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया था कि ऐसा करने से हमें 'आध्यात्मिक गुरुहत्या का पाप लगेगा'। कहते हैं, इसी अपराध के कारण शिष्यों में यह उक्ति प्रचलित हुई कि 'बूड़ा वंश कबीर का जो उपजा पूत कमाल'। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने लिखा है कि कमाल के विरोध के होते हुए भी सुरतगोपाल और धर्मदास को आश्रय करके कबीर का सम्प्रदाय गठित होकर ही रहा। फिर भी यह कहना सम्भव नहीं है कि काशीवाली शाखा के प्रवर्त्तक महात्मा सुरतगोपाल ने सचमुच ही सम्प्रदाय का संघटन किया था या नहीं। कुछ शिष्य-मण्डली का होना एक बात है और संप्रदाय का संघटन दूसरी बात। महात्मा सुरतगोपाल द्वारा प्रवर्त्तित कहा जाने वाला कबीरचौरा का सम्प्रदाय निश्चय ही धर्मदासी शाखा से अधिक प्राचीन है।

सुरतगोपाली शाखा : आजकल कबीरचौरा वाली शाखा के प्रधान गुरु महात्मा रामविलास साहेब हैं। ये इक्कीसवें गुरु हैं। कहा जाता है कि कबीरचौरा में गुरुओं की जो समाधियाँ हैं, उनमें बहुत प्राचीन गुरुओं की समाधियाँ नहीं हैं। सबसे पुरानी समाधि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ की हैं। उन दिनों काशी के राजा महाराजा बलवन्तसिंह (मृत्यु 1770 ई.) और उनके पुत्र महाराजा चेतसिंह सम्प्रदाय के भक्तों में थे। इसके कुछ पहले अवश्य ही सम्प्रदाय का पूर्ण संघटन हो गया रहा होगा। यह भी कहा जाता है कि नीरूटीला आठवें गुरु सुखदास ने अधिकृत किया था और वर्त्तमान चौरा तो बाद में अधिकृत हुआ है। इतना निश्चित है कि पुराने गुरुओं का बहुत ब्यौरेवार इतिहास सुरक्षित नहीं है। और यह इस बात का सबूत है कि कबीर की मृत्यु के दीर्घकाल बाद तक सम्प्रदाय का कोई अच्छा-सा सुसंघटित रूप नहीं था। परन्तु फिर भी सुरतगोपालजी द्वारा स्थापित गद्दी का बहुत मान है। 'बीजक' की टीकाओं के द्वारा और नये-नये ग्रन्थों के निर्माण के द्वारा इस शाखा ने सम्प्रदाय को क्रमबद्ध दर्शन और सुचिन्तित विचार-पद्धति देने का प्रयत्न किया है। परवर्त्ती काल के सन्त पूर्णदास ने अपनी 'तिर्ज्या' टीका और 'निर्णय सार' नामक ग्रन्थों द्वारा सम्प्रदाय को तर्कसंगत तत्त्ववाद दिया है। परन्तु इस सम्प्रदाय को बुद्धिवाद रूप देने का श्रेय

बिहार के रामरहेस साहब को है जो टेकारी (जिला गया) राज्य के मन्त्री पं. भगवान दुबे के पुत्र और कबीरचौरा के पन्द्रहवें गुरु महात्मा चरणदास के शिष्य थे। इनकी पुस्तक 'पंचग्रन्थी बीजक' में प्रतिपादित सिद्धान्तों को क्रमबद्ध दर्शन का रूप दिया गया है। कबीरदास की वाणियों के चार भेद बताये गये हैंः जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख, और गुरु मुख वाणी। इनमें गुरुमुख वाणियों को प्रामाणिक वाणी या 'टकसार' वाणी माना गया है। यह शब्द मीमांसा-दर्शन के 'विधि-वाक्यों' का समशील है। इस प्रकार साहित्य के इतिहास में सुरतगोपाल की शाखा 'बीजक' के सिद्धान्तों को तर्कसंगत और बुद्धिवादी दार्शनिक रूप देने के गौरव की अधिकारिणी है। इस शाखा के पूर्ववर्त्ती गुरुओं ने यदि कुछ साहित्य लिखा भी हो तो वह प्राप्य नहीं है, इसलिए बहुत-से विद्वानों ने अनुमान किया है कि सम्प्रदाय की स्थापना बाद में हुई है।

धर्मदासी शाखा : धर्मदासी शाखा के बारे में कुछ अधिक कहा जा सकता है। सौभाग्यवश इस शाखा की गुरु-परम्परा भी प्राप्य है। इस शाखा के अनुयायियों का विश्वास है कि कबीरदास ने स्वयं धर्मदास के वंशजों को बयालीस पीढ़ी तक गद्दी पाने की भविष्यवाणी की थी और यह भी कहा था कि प्रत्येक गुरु 25 वर्ष और 21 दिन तक गद्दी पर विराजेगा। इस शाखा के अनुयायी इस भविष्यवाणी पर विश्वास करते आये हैं, पर हाल के गुरुओं का इतिहास इस विश्वास में बाधक बना है। इस सम्प्रदाय की जो गुरु-परम्परा प्राप्त है उसमें ग्यारहवें गुरु प्रगटनाम का स्वर्गवास 1869 ई. में हुआ। इनके दो पुत्रों ने अपने को गद्दी का हकदार घोषित किया। 'धीरजनाम' को बम्बई के हाईकोर्ट ने ही गद्दी का वास्तविक हकदार घोषित किया, परन्तु उग्रनाम अधिक योग्य और गुणी थे और शिष्यों की श्रद्धा आकृष्ट करने में धीरजनाम से अधिक सफल सिद्ध हुए। धीरजनाम 1894 ई. में गुरुगद्दी पर विराजे और 17 वर्ष तक बने रहे। सन् 1914 ई. में दयानाम साहेब गद्दी पर समासीन हुए। धीरजनाम के वंशधर कवर्धा में अलग गद्दी पर बैठते रहे। पर इस शाखा के वास्तविक गुरु उग्रनाम ही बने रहे जिनकी गद्दी दामाखेड़ा में थी। सो, इस प्रकार 1894 ई. के बाद का इतिहास बताता है कि प्रत्येक गुरु के 25 वर्ष 21 दिन तक गद्दीनशीन रहने का विश्वास बहुत विश्वसनीय नहीं है। फिर भी यदि धीरजनाम के पूर्ववर्त्ती ग्यारह गुरुओं का काल 25-25 वर्ष मान लिया जाए तो 275 वर्ष होते हैं और इस प्रकार महात्मा धर्मदास का गुरुपद ग्रहण करने का समय 1894--275 = 1619 ई. ठहरता है। यह बात काफी उलझन में डाल देती है; क्योंकि प्रसिद्ध यह है कि धर्मदास जब उत्तर भारत में तीर्थयात्रा के लिए गये थे, तो मथुरा में कबीरदास से उनकी मुलाकात हुई थी और बाद में गढ़ बँधी (बाँधवगढ़, रीवाँ राज्य की उन दिनों की राजधानी) में भी कबीरदास से उनकी मुलाकात हुई थी। कबीरदास की मृत्यु-तिथि 1517 ई. से इधर नहीं ले आयी जा सकती। इसका मतलब यह हुआ कि कबीरदास के साक्षात्कार के कम-से-कम सौ वर्ष बाद धर्मदास गुरुपद पर आसीन हुए। यह बात कुछ ठीक नहीं जँचती। के. साहब ने लिखा है कि केवल दो बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि कुछ गुरुओं के नाम छूट गये हैं या फिर यह कि धर्मदास वस्तुतः कबीर के समकालीन नहीं थे। सम्प्रदाय-प्रतिष्ठा के बाद उनको कबीर का साक्षात् शिष्य कहा गया होगा। उनकी दूसरी बात ही अधिक सम्भव जान पड़ती है। परन्तु इन दोनों ही अनुमानों से एक ही नतीजे पर पहुँचा जा सकता है। वह यह कि पन्थ का दृढ़ संघटन सत्रहवीं शताब्दी के पहले नहीं हुआ था। यदि सचमुच ही धर्मदास परवर्त्ती थे और कबीर के साक्षात् शिष्य नहीं थे (जैसा कि सम्भव नहीं जान पड़ता), तब तो सम्प्रदाय-स्थापन परवर्त्ती सिद्ध हो ही जाता है, पर यदि प्रथम अनुमान ठीक हो, अर्थात् कुछ गुरुओं के नाम भुला दिये गये हों, तो भी सिद्ध होता है कि सम्प्रदाय का संघटन शुरू-शुरू में या तो एकदम हुआ ही नहीं था या हुआ था भी तो वह तब बहुत शिथिल था। नहीं तो गुरुओं के नाम भुलाये नहीं जाते।

इस प्रसंग में लक्ष्य करने की बात यह है कि कुछ प्रमाण इस प्रकार के भी उपलब्ध हैं जिनसे पता लगता है कि मगहर में कबीरदास का जब तिरोधान हो गया तो उसके बाद वे पुनर्वार मथुरा में प्रगट हुए। भारत-पथिक कबीरपन्थी स्वामी युगलानन्दजी ने 'श्री भक्तमालान्तर्गत' कबीर-कथा संशोधित करके छपायी है। इस कथा में स्पष्ट लिखा है कि मगहर में तिरोधान होने के बाद कबीर साहब मथुरा में प्रगट हुए और बाद में बाँधवगढ़ आ गये। कबीरपन्थी लोगों के विश्वास के अनुसार इसमें कोई विरोध नहीं है। वस्तुतः कबीर साहब उनके मत से मनुष्य रूप में अवतरित नहीं हुए थे बल्कि मानुष रूप में प्रतिभात होते थे। किसी बादशाह ने जब उन पर तलवार चलायी थी, तो तलवार उनके शरीर से इस प्रकार निकल गयी थी जैसे हवा के भीतर से निकल गयी हो! इसलिए कबीर का पुनर्वार प्रगट होना कबीरपन्थी विश्वास के अनुसार असम्भव नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि कबीर की मृत्यु के बहुत बाद धर्मदास मथुरा गये थे और उन्हें भावरूप में कबीर का साक्षात्कार हुआ था। जो हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि कबीर साहब के तिरोधान के बहुत बाद सम्प्रदाय का संघटन हुआ था।

साभार : हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली

रैदास

रामानन्द के शिष्य कहे जाने वाले अन्य सन्तों में कुछ थोड़े-से ही ऐसे हैं, जिन्हें साहित्य के इतिहास में विवेचनीय समझा जा सकता है। भिन्न-भिन्न कालों में जिन साधकों की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उनकी चर्चा यहाँ की जा रही है। इनमें प्रथम और प्रमुख तो चमार जाति के भूषण रैदास हैं जिनकी कोई पूरी पुस्तक अभी तक उपलब्ध नहीं है, लेकिन उनकी फुटकल वाणियाँ प्राप्त हुई हैं। इन वाणियों से जान पड़ता है कि वे जाति के चमार थे, उनके कुटुम्ब के लोग बनारस के आसपास ही ढोर ढोने का काम करते थे और नानकदेव, कबीर, सधना और सेना नाई नाम के अन्य सन्त इनके पहले तर चुके थे। एक परम्परा के अनुसार वे कबीर से उम्र में बड़े थे। परन्तु आगे जो बातें बतायी जा रही हैं, उन्हें देखते हुए यह बात बहुत विश्वसनीय नहीं जान पड़ती। अपनी जाति का व्यवसाय करते हुए वे भगवद्भजन में लीन रहा करते थे। कहते हैं, एक बार जब किसी ने कबीर से भगवत्प्राप्ति का रास्ता पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'मैं तो छोटा बच्चा था, माँ की गोद में बैठकर गन्तव्य स्थान पर पहुँच गया, रास्ता रैदास को मालूम है क्योंकि माँ ने उसके सिर पर एक गठरी भी रख दी थी।' कबीर की इस कथित उक्ति का यह अर्थ लगाया जाता है कि वे रैदास से उम्र में छोटे थे। सिर पर गठरी ढोकर लाने का अर्थ यह है कि उन्होंने बड़ी कठिनाइयों से जीविका उपार्जन करते हुए भगवद्भजन का रास्ता अपनाया था।

परन्तु रैदास का सम्बन्ध मीराबाई से भी बताया जाता है। मीराबाई ने बड़ी भक्ति के साथ अपने भजनों में इनका नाम लिया है। इनका कोई पृथक सम्प्रदाय नहीं है, किन्तु फर्रुखाबाद जिले के 'साधो' सम्प्रदाय वालों को इनकी परम्परा में माना जाता है। कहा जाता है कि रैदास के शिष्य उदयदास थे और उनके शिष्य वीरभानु थे, जिन्होंने पन्द्रहवी शताब्दी के मध्य में सम्प्रदाय की स्थापना की थी। इन सब बातों पर विचार करने से यह जान पड़ता है कि ये कबीर से कुछ बाद में उत्पन्न हुए होंगे। सम्भवतः सन् ईस्वी की पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में यह वर्त्तमान थे। आदिग्रन्थ में इनके 100 के करीब पद संगृहीत हैं। बेलवेडियर प्रेस से इनकी वाणियों का जो नया संग्रह निकला है, उसमें कुछ नये पद भी हैं। दोनों पदों के संग्रहों में पाठ-भेद भी है। इन्हीं दोनों संग्रहों के आधार पर रैदासजी की वाणी पर विचार किया जा सकता है। उपलब्ध वाणियों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह समझा जाये कि वे सगुणमार्ग के विरोधी थे, परन्तु स्वर उनका निर्गुणवादियों का ही है।

रैदास की विशेषता : रैदास के भजनों में अत्यन्त शान्त और निरीह भक्त-हृदय का परिचय मिलता है। साधारणतः निर्गुण सन्तों में कुछ-न-कुछ सुरति, निरति और इंगला, पिंगला का विचार आ ही जाता है। रैदास के कुछ भजनों में भी वे स्पष्ट आये हैं, परन्तु रैदास की वाणियाँ इन उलझनदार बातों से मुक्त हैं। यद्यपि उनमें अद्वैत वेदान्तियों के परिचित उपमानों तथा नाथों और निरंजनों के सहज, शून्य आदि शब्द भी आ जाते हैं, फिर भी उनमें किसी प्रकार की वक्रता या अटपटापन नहीं है और न ज्ञान के दिखावे का आडम्बर ही है। उदाहरणार्थ,

माधो भरम कैसे न बिलाइ,
ताते द्वैत दरसे आई।
कनक कुंडल सूत पट ज्यों रजु भुअंग भ्रम जैसा।
जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों ब्रह्म गति ऐसा।
विमल एक रस उपजे न विनसै उदय अस्त दोउ नाहीं।
विगताविगत घटै नहिं कबहूँ बसत बसै सब माहीं।
निश्चल निराकार अज अनुपम निर्भय गति गोविंदा।
अगम अगोचर अच्छर अतरक निरगुन अंत अनंता।
सदा अतीत ज्ञान धन वर्जित निर्विकार अविनासी।
कह रैदास सहज सुन्न सत जीवन्मुक्ति निधि कासी।

इन पदों में एक प्रकार की ऐसी आत्म-निवेदन और परमात्म-विरह की पीड़ा है जो केवल तत्त्वज्ञान की चर्चा से प्राप्त नहीं हो सकती। वह ऐसे हृदय की अनुभूति है जो ज्ञान की चर्चा से जटिल नहीं बना है, बल्कि प्रेमानुभूति से अत्यन्त सहज हो गया है। उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि ''हे भगवान्, यह भी कैसी प्रीति है कि तुम मुझे देख रहे हो पर मैं तुम्हें नहीं देख पा रहा हूँ! इस विसदृश प्रीति की बात जब सोचता हूँ तो मेरी मति-बुद्धि खो जाती है। परस्पर की प्रीति तो ऐसी होनी चाहिए कि तुम भी मुझे देखो और मैं भी तुम्हें देखूँ''

तू मोंहि देखै हौं तोंहि देखौं, प्रीत परस्पर होई।
तू मोंहि देखै तौंहि न देखौं, यहि मति बुधि सब खोई।

अनाडम्बर, सहज शैली और निरीह आत्म-समर्पण के क्षेत्र में रैदास के साथ कम सन्तों की तुलना की जा सकती है। यदि हार्दिक भावों की प्रेषणीयता काव्य का उत्तम गुण हो तो निस्सन्देह रैदास के भजन इस गुण से समृद्ध हैं। सीधे-सादे पदों में सन्त कवि के हृद्भाव बड़ी सफाई से प्रकट हुए हैं और वे अनायास सहृदय को प्रभावित करते हैं। उनका आत्म-निवेदन, दैन्य भाव और सहजभक्ति पाठक के हृदय में इसी श्रेणी के भाव संचारित करते हैं। इसी को काव्य में प्रेषणीयता का गुण कहते हैं।

साभार : हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली

दादू : व्यक्तित्व और साहित्य

दादू तुलसीदास के समकालीन थे। वे कबीरदास के मार्ग के अनुगामी थे। उनकी उक्तियों में बहुत-कुछ कबीरदास की छाया है। फिर भी वे वही नहीं थे जो कबीरदास थे। सम्भवतः समाज के निचले स्तर से उनका भी आविर्भाव हुआ था, जन्मगत अवहेलना को लेकर इनका भी विकास हुआ था, पर उस युग तक कबीर का प्रवर्त्तित निर्गुणमतवाद काफी लोकप्रिय हो गया था। नीच कही जाने वाली जातियों में उत्पन्न महापुरुषों ने अपनी प्रतिभा और भगवन्निष्ठा के बल पर समाज के विरोध का भाव कम कर दिया था। दादू ने शायद इसीलिए परम्परा समागत उच्च-नीच विधान के लिए उत्तरदायी समझी जाने वाली जातियों पर उस तीव्रता के साथ आक्रमण नहीं किया जिसके साथ कबीर ने किया था। इसके सिवा उनके स्वभाव में भी कबीर के मस्तानेपन के बदले विनयमिश्रित मधुरता अधिक थी। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों और साधना-संबंधी मिथ्याचारों पर आघात करते समय दादू कभी उग्र नहीं होते। अपनी बात कहते समय वे बहुत नम्र और प्रीत दिखते हैं। अपने जीवनकाल में ही वे इतने प्रख्यात हुए थे कि सम्राट् अकबर ने उन्हें सीकरी में बुलाकर चालीस दिन तक निरन्तर सत्संग किया था, फिर भी दादू के पदों में अभिमान के भाव बिल्कुल नहीं हैं। उन्होंने बराबर इस बात पर जोर दिया है कि भक्त होने के लिए नम्र, शीलवान, अफलाकांक्षी और वीर होना चाहिए। कायरता उनके निकट साधना की सबसे बड़ी शत्रु है। वही साधक हो सकता है जो वीर हो, सिर उतारकर रख सके। कबीर (क-बीर) अपना सिर काटकर ('क' अक्षर छोड़कर) ही वीर हो सके थे। जो साहस के साथ मिथ्याचार का विरोध नहीं कर सकता वह वीर भी नहीं, वह वीर साधक भी नहीं। दादू के इस कथन का बेढंगा अर्थ करके बाद के उनके शिष्यों का एक दल (नागा) केवल लड़ाकू ही रह गया।

कबीर की भाँति दादू ने भी रूपकों का कहीं-कहीं आश्रय लिया है, पर अधिक नहीं। अधिकांश में उनकी उक्तियाँ सीधी और सहज ही समझ में आ जाने लायक होती हैं। उनके पदों में जहाँ निर्गुण, निराकार, निरंजन को व्यक्तिगत भगवान् के रूप में उपलब्ध किया गया है वहाँ वे कवित्व के उत्तम उदाहरण हो गये हैं। ऐसी अवस्था में प्रेम का इतना सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है कि बरबस सूफी भावापन्न कवियों की याद आ जाती है। सूफियों की भाँति इन्होंने भी प्रेम को ही भगवान् का रूप और जाति बताया है। विरह के पदों में, सीमा का असीम से मिलने के लिए तड़पना सहृदय को मर्माहत किये बिना नहीं रह सकता।

भाषा उनकी यद्यपि पश्चिमी राजस्थानी से मिली हुई परिमार्जित हिन्दी है तथापि उसमें गजब का जोर है। स्थान-स्थान पर प्रकृति का जो वर्णन उन्होंने किया है, वह देखने ही योग्य है। भाषा में किसी प्रकार का काव्यगुण आरोप नहीं किया गया, छन्दों का नियम प्रायः भंग होता रहता है, फिर भी अपने स्वाभाविक वेग के कारण वह अत्यन्त प्रभावजनक हुई है।

कबीर की भाँति दादूदयाल भी जिन पाठकों को उद्देश्य करके लिखते हैं, वे साधारण कोटि के अशिक्षित आदमी हैं। उनके योग्य भाषा लिखने में दादू को स्वभावतः ही सफलता मिली है; क्योंकि वे स्वयं भी कोई पण्डित नहीं थे, और जो कुछ कहते थे, अनुभव के बल पर कहते थे। उनके पदों में मुसलमानी साधना के शब्द भी अधिक प्रयुक्त हुए हैं। वे स्वयं जन्म से मुसलमान हों या न हों, मुस्लिम उपासना-पद्धति के संसर्ग में आ चुके थे, फिर भी उनका मत अधिकतर हिन्दू भावापन्न था। कबीर के समान मस्तमौला न होने के कारण वे प्रेम के वियोग और संयोग के रूपकों में वैसी मस्ती तो नहीं ला सके हैं, पर स्वभावतः सरल और निरीह होने के कारण ज़्यादा सहज और पुरअसर बना सके हैं। कबीर का स्वभाव एक तरह के तेज से दृढ़ था, और दादू का स्वभाव नम्रता से मुलायम। कबीर के लिए उनका स्वभाव बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ; क्योंकि उन्हें अपने रास्ते के बहुत-से झाड़-झंखाड़ साफ करने थे। दादू को मैदान बहुत-कुछ साफ मिला था और उसमें उनके मीठे स्वभाव ने आश्चर्यजनक असर पैदा किया। यही कारण है कि दादू को कबीर की अपेक्षा अधिक शिष्य और सम्मानदाता मिले। पर जीवन में कहीं भी दादू कबीर के महत्त्व को न भूल सके और पद-पद पर कबीर का उदाहरण देकर साधना-पद्धति का निर्देश करते रहे।

साभार : हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली

देखना ओ गंगा मइया!

■ नागार्जुन

चंद पैसे
दो-एक दुअन्नी-इकन्नी
कानपुर-बम्बई की अपनी कमाई में से
डाल गए हैं श्रद्धालु गंगा मइया के नाम
पुल पर से गुजर चुकी है ट्रेन
नीचे प्रवहमान उथली-छिछली धार में
फुर्ती से खोज रहे पैसे
मल्लाहों के नंग-धड़ंग छोकरे
दो-दो पैर
हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकती रेत की ले रहे टोह
बहुधा-अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि!
बीड़ी पिएँगे...
आम चूसेंगे...
या कि मलेंगे देह में साबुन की सुगंधित टिकिया
लगाएँगे सर में चमेली का तेल
या कि हम-उम्र छोकरी को टिकली ला देंगे
पसंद करे शायद यह मगही पान का टकही बीड़ा
देखना ओ गंगा मइया!
निराश न करना इन नंग-धड़ंग चतुर्भुजों को!
कहते हैं, निकली थीं कभी तुम
बड़े चतुर्भुज के चरणों में निवेदित अर्घ-जल से
बड़े होंगे तो छोटे चतुर्भुज भी चलाएँगे चप्पू
पुष्ट होगा प्रवाह तुम्हारा इनके भी श्रम-स्वेद-जल से
मगर अभी इनको निराश न करना
देखना ओ गंगा मइया!

साभार : नागार्जुन रचनावली
1954, सतरंगे पंखों वाली

यमुना के प्रति

■ निराला

स्वप्नों-सी उन किन आँखों की
पल्लव-छाया में अम्लान
यौवन की माया-सा आया
मोहन का सम्मोहन ध्यान?

गन्धलुब्ध किन अलिबालों के
मुग्ध हृदय का मृदु गुञ्जार
तेरे दृग-कुसुमों की सुषमा
जाँच रहा है वारम्वार?

यमुने, तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक-प्रिया-सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान?

बता, कहाँ अब वह वंशीवट?
कहाँ गये नटनागर श्याम?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दाधाम?

कभी यहाँ देखे थे जिनके
श्याम-विरह से तप्त शरीर,
किस विनोद की तृषित गोद में
आज पोंछती वे दृग-नीर?

रञ्जित सहज सरल चितवन में
उत्कण्ठित सखियों का प्यार
क्या आँसू-सा ढुलक गया वह
विरह-विधुर उर का उद्‌गार?

तू किस विस्मृत की वीणा से
उठ-उठकर कातर झंकार
उत्सुकता से उकता-उकता
खोल रही स्मृति के ढृढ़ द्वार?

अलस प्रेयसी-सी स्वप्नों में
प्रिय की शिथिल सेज के पास
लघु लहरों के मधु स्वरों में
किस अतीत का गूढ़ विलास?

उर-उर में नूपुर की ध्वनि-सी
मादकता की तरल तरङ्ग
विचर रही है मौन पवन में
यमुने, किस अतीत के संग?

किस अतीत का दुर्जन जीवन
अपनी अलकों में सुकुमार
कनक-पुष्प-सा गूँथ लिया है-
किसका है यह रूप अपार?

निर्निमेष नयनों में छाया
किस विस्मृति-मदिरा का राग
जो अब तक पुलकित पलकों से
छलक रहा यह विपुल सुहाग?

मुक्त हृदय के सिंहासन पर
किस अतीत के ये सम्राट
दीप रहे जिनके मस्तक पर
रवि-शशि-तारे-विश्व-विराट?

निखिल विश्व की जिज्ञासा-सी
आशा की तू झलक, अमन्द
अन्तःपुर की निज शय्या पर
रच-रच मृदु छन्दों के बन्द

किस अतीत के स्नेह-सुहृद को
अर्पण करती तू निज ध्यान-
ताल-ताल के कम्पन से द्रुत
बहते हैं ये किसके गान?

विहगों की निद्रा से नीरव
कानन के संगीत अपार,
किस अतीत के स्वप्न-लोक में
करते हैं मृदु-पद-संचार?

मुग्धा के लज्जित पलकों पर
तू यौवन की छवि अज्ञात,
आँख-मिचौनी खेल रही है
किस अतीत शिशुता के साथ?

किस अतीत सागर-संगम को
बहते खोल हृदय के द्वार
वोहित के हित सरल अनिल-से
नयन-सलिल के स्रोत अपार?

उस सलज्ज ज्योत्स्ना-सुहाग की
फेनिल शय्या पर सुकुमार,
उत्सुक, किस अभिसार निशा में
गयी कौन स्वप्निल पर मार?

उठ-उठकर अतीत-विस्मृति से
किसकी स्मिति यह-किसका प्यार,
तेरे श्याम कपोलों में खुल
कर जाती है चकित विहार?

जीवन की इस सरस सुरा में,
कह, यह किसका मादक राग
फूट पड़ा तेरी ममता में
जिसकी समता का अनुराग?

किन नियमों के निर्मम बन्धन
जग की संसृति का परिहास
कर बन जाते करुणा-क्रन्दन?-
कह, वे किसके निर्दय पाश?

कलियों की मुद्रित पलकों में
सिसक रही जो गन्ध अधीर
जिसकी आतुर दुख-गाथा पर
ढुलकाते पल्लव-दृग नीर,

बता, करुणा-कर-किरण बढ़ाकर
स्वप्नों का सचित्र संसार
आँसू पोंछ दिखाया किसने
जगती का रहस्यमय द्वार?

जागृति के नव इस जीवन में
किस छाया का माया-मन्त्र
गूँज-गूँज मृदु खींच रहा है
अति, दुर्बल जल का मन-यन्त्र?

अलि-अलकों के तरल तिमिर में
किसकी लोल लहर अज्ञात
जिसके गूढ़ मर्म में निश्चित
शशि-सा मुख, ज्योत्स्ना-सी गात?

कह, सोया किस खञ्जन-वन में
उन नयनों का अञ्जन-राग?
बिखर गये अब किन पातों में
वे कदम्ब-मुख-स्वर्ण-पराग?

चमक रहे अब किन तारों में
उन हीरों के मुक्ता-हीर?
बजते हैं उन किन चरणों में
अब अधीर नूपुर-मञ्जीर?

किस समीर से काँप रही वह
वंशी की स्वर-सरित-हिलोर?
किस वितान से तनी प्राण तक
छू जाती वह करुण मरोर?

खींच रही किस आशा-पथ पर
यौवन की वह प्रथम पुकार?
सींच रही लालसा-लता निज
किस कङ्कण की मृदु झङ्कार?

उमड़ चला है कह किस तट पर
क्षुब्ध प्रेम का पारावार?
किसकी विकच वीचि-चितवन पर
अब होता निर्भय अभिसार?

भटक रहे हैं किसके मृग-दृग?
बैठी पथ पर कौन निराश?-
मारी मरु-मरीचिका की-सी
ताक रही उदास आकाश

हिला रहा अब कुञ्जों के किन
द्रुम-पुञ्जों का हृदय कठोर
विगलित विफल वासनाओं से
क्रन्दन-मलिल पुलिन का रोर?

किस प्रसाद के लिए बढ़ा अब
उन नयनों का विरस विषाद?
किस अजान में छिपा आज वह
श्याम गगन का घन उन्माद?

कह, किस अलस मराल-चाल पर
गूँज उठे सारे संगीत,
पद-पद के लघु ताल-ताल पर
गति स्वच्छन्द, अजीत अभीत?

स्मिति-विकसित नीरज नयनों पर
स्वर्ण-किरण-रेखा अम्लान
साथ-साथ प्रिय तरुण अरुण के
अन्धकार में छिपी अजान !

किस दुर्गम गिरि के कन्दर में
डूब गया जग का निःश्वास?
उतर रहा अब किस अरण्य पर
दिनमणि-हीन अस्त आकाश?

आप आ गया प्रिय के कर में
कह, किसका वह कर सुकुमार
विटप-विहग ज्यों फिरा नीड़ में
सहम तमिस्र देख संसार?

स्मर-सर के निर्मल अन्तर में
देखा था जो शशि प्रतिभात,
छिपा लिया है उसे जिन्होंने
हैं वे किस घन वन के पात?

कहाँ आज वह निद्रित जीवन
बँधा बाहुओं में भी मुक्त?
कहाँ आज वह चितवन चेतन
श्याम-मोह-कज्जल अभियुक्त?

वह नयनों का स्वप्न मनोहर
हृदय-सरोवर का जलजात,
एक चन्द्र निस्सीम व्योम का,
वह प्राची का विमल प्रभात,

वह राका की निर्मल छवि, वह
गौरव रवि, कवि का उत्साह,
किस अतीत से मिला आज वह
यमुने, तेरा सरस प्रवाह?

खींच रहा है मेरा मन वह
किस अतीत का इंगित मौन
इस प्रसुप्ति से जगा रही जो
बता, प्रिया-सी है वह कौन?

वह अविकार निविड़-सुख-दुख-गृह,
वह उच्छृंखलता उद्दाम,
वह संसार भीरु-दृग-संकुल,
ललित-कल्पना-गति अभिराम,

वह वर्षों का हर्षित क्रीड़न,
पीड़न का चञ्चल संसार,
वह विलास का लास-अङ्क, वह
भृकुटि कुटिल प्रिय-पथ का पार;

वह जागरण मधुर अधरों पर,
वह प्रसुप्ति नयनों में लीन,
मुग्ध मौन मन में उन्मुख सुख
आकर्षणमय नित्य नवीन,

वह सहसा सजीव कम्पन-द्रुत
सुरभि-समीर, अधीर वितान,
वह सहसा स्तम्भित वक्षःस्थल,
टलमल पद, प्रदीप निर्वाण;

गुप्त-रहस्य-सृजन-अतिशय श्रम,
वह क्रम-क्रम से सञ्चित ज्ञान,
स्खलित-वसन-तनु-सा तनु अमरण,
नग्न, उदास, व्यथित अभिमान;

वह मुकुलित लावण्य लुप्तमधु,
सुप्त पुष्प में विकल विकास,
वह सहसा अनुकूल प्रकृति के
प्रिय दुकूल में प्रथम प्रकाश;

वह अभिराम कामनाओं का
लज्जित उर, उज्जवल विश्वास,
वह निष्काम दिवा-विभावरी,
वह स्वरूप-मद-मञ्जुल हास;

वह सुकेश-विस्तार कुञ्ज में
प्रिय का अति उत्सुक सन्धान,
तारों के नीरव समाज में
यमुने, यह तेरा मृदु गान;

वह अतृप्त-आग्रह से सिञ्चित
विरह-विटप का मूल मलीन
अपने ही फूलों से वंचित
वह गौरव-कर निष्प्रभ, क्षीण;

वह निशीथ की नग्न वेदना,
दिन की दम्य दुराशा आज
कहाँ अँधेरे का प्रिय परिचय,
कहाँ दिवस की अपनी लाज?

उदासीनता गृह-कर्मों में,
मर्म-मर्म में विकसित स्नेह,
निरपराध हाथों में छाया
अञ्जन-रञ्जन-भ्रम, सन्देह;

विस्मृत-पथ-परिचायक स्वर से
छिन्न हुए सीमा-दृढ़ पाश,
ज्योत्स्ना के मण्डप में निर्भय
कहाँ हो रहा है वह रास?

वह कटाक्ष-चञ्चल यौवन-मन
वन-वन प्रिय-अनुसरण-प्रयास,
वह निष्पलक सहज चितवन पर
प्रिय का अचल अटल विश्वास;

अलक-सुगन्ध-मदिर सरि-शीतल
मन्द अनिल, स्वच्छन्द प्रवाह,
वह विलोल हिल्लोल चरण, कटि,
भुज, ग्रीवा का वह उत्साह;

मत्त-भृंग-सम सङ्ग-सङ्ग तम-
तारा मुख-अम्बुज-मधु-लुब्ध,
विकल विलोड़ित चरण-अंक पर
शरण-विमुख नूपुर-उर क्षुब्ध;

वह संगीत विजय-मद-गर्वित
नृत्य-चपल अधरों पर आज,
वह अजीत-इङ्गित-मुखरित मुख
कहाँ आज वह मुखमय साज?

वह अपनी अनुकूल प्रकृति का
फूल, वृन्त पर विकच अधीर,
वह उदार, संवाद विश्व का
वह अनन्त नयनों का नीर,

वह स्वरूप-मध्याह्न-तृषा का
प्रचुर आदि-रस, वह विस्तार
सफल प्रेम का, जीवन के वह
दुस्तर सर-सागर का पार;

वह अञ्जलि कलिका की कोमल,
वह प्रसून की अन्तिम दृष्टि,
वह अनन्त का ध्वंस सान्त, वह
सान्त विश्व की अगणित सृष्टि;

वह विराम-अलसित पलकों पर
सुधि की चञ्चल प्रथम तरङ्ग,
वह उद्दीपन, वह मृदु कम्पन
वह अपनापन, वह प्रिय-सङ्ग;

वह अज्ञात पतन लज्जा का
स्खलन शिशिल घूँघट का देख
हास्य-मधुर निर्लज्ज उक्ति वह,
वह नव यौवन का अभिषेक;

मुग्ध रूप का वह क्रय-विक्रय,
वह विनिमय का निर्दय भाव,
कुटिल करों को सौंप सुहृद-मन,
वह विस्मरण, मरण, वह चाव,

असफल छल की सरल कल्पना,
ललनाओं का मृदु उद्गार
बता, कहाँ विक्षुब्ध हुआ वह
दृढ़ यौवन का पीन उभार;

उठा तूलिका मृदु चितवन की
भर मन की मदिरा में मौन,
निर्निमेष नभ-नील-पटल पर
अटल खींचती छवि, वह कौन?

कहाँ यहाँ अस्थिर तृष्णा का
बहता अब वह स्रोत अजान?
कहाँ हाय निरुपाय तृणों से
बहते अब वे अगणित प्राण?

नहीं कहीं नयनों में पाया
नहीं समाया वह अपराध,
कहाँ, कहाँ अधिकृत अधरों पर
उठता वह सङ्गीत अबाध?

मिली विरह के दीर्घ श्वास से
बहती नहीं कहीं बातास,
कहाँ सिसककर मलिन मर्म में
मुरझा जाता है निःश्वास?

कहाँ छलकते अब वैसे ही
व्रज-नागरियों के गागर?
कहाँ भीगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर?

बँधा बाहुओं में घट क्षण-क्षण
कहाँ प्रकट बकता अपवाद?
अलकों को, किशोर पलकों को
कहाँ वायु देती संवाद?

कहाँ कनक-कोरों के नीरव
अश्रु-कणों में भर मुसकान,
विरह-मिलन के एक साथ ही
खिल पड़ते वे भाव महान!

कहाँ सूर के रूप-बाग के
दाड़िम, कुन्द, विकच अरविन्द,
कदली, चम्पक, श्रीफल, मृगशिशु,
खंजन, शुक, पिक, हंस, मिलिन्द!

एक रूप में कहाँ आज वह
हरि-मृग का निर्वैर विहार,
काले नागों से मयूर का
बन्धु-भाव, सुख सहज अपार!

पावस की प्रगल्भ धारा में
कुञ्जों का वह कारागार,
अब जग के विस्मित नयनों में
दिवस-स्वप्न-सा पड़ा असार!

द्रव-नीहार अचल-अधरों से
गल-गल गिरि-उर के सन्ताप,
तेरे तट से अटक रहे थे
करते अब सिर पटक विलाप;

विवश दिवस के-से आवर्तन
बढ़ते हैं अम्बुधि की ओर,
फिर-फिर फिर भी ताक रहे हैं
कोरों में निज नयन मरोर !

एक रागिनी रह जाती जो
तेरे तट पर मौन उदास,
स्मृति-सी भग्न भवन की, मन को
दे जाती अति क्षीण प्रकाश।

टूट रहे हैं पलक-पलक पर
तारों के ये जितने तार,
जग के अब तक के रागों से
जिनमें छिपा पृथक् गुञ्जार,

उन्हें खींच निस्सीम व्योम की
वीणा में कर-कर झङ्कार,
गाते हैं अविचल आसन पर
देवदूत जो गीत अपार,

कम्पित उनके करुण करों में
तारक तारों की-सी तान,
बता, बता, अपने अतीत के
क्या तू भी गाती है गान?

गरीबी की पुकार

हमारे ईश हैं बस वे खड़े मैदान में जो हैं
न बदलेंगे कभी हमसे अड़े इक शान में जो हैं
नहीं वे ईश कहलाते बड़े अभिमान में जो हैं
चढ़े पर वे गिरेंगे ही पड़े अज्ञान में जो हैं ।।1।।

वही निर्झर, विषम वर्षा-सलिल-संचार में बढ़कर
प्रलय का-सा अनय जो कर गया संसार में बढ़कर,
तड़पता है पड़ा, सूरज अगलता आग जब उस पर,
कलेजा थामकर कहता, 'गरीबों पर रहम अब कर' ।।2।।

लगायेंगे वही बेड़ा हमारा पार दुनिया में
हमें जिनका हमारा भी जिन्हें है प्यार दुनिया में ।।3।।

साभार : निराला रचनावली

नज़ीर अकबराबादी

■ फ़िराक़

कवि के बारे में कई साहित्य-प्रेमियों की धारणा और कल्पना प्रायः ऐसी रही है कि कवि इस हलचल से भरी हुई दुनिया, आबादी की भीड़-भाड़, घरों, मुहल्लों, बाज़ारों और मेलों-ठेलों के शोर-ओ-गुल से बिल्कुल अलग रहकर एक सुंदर कल्पित संसार में रहता है। धरती के मैदानों, जंगलों, आबादियों में अगर रहता भी है तो एकांतवासी के तौर पर रहता है। यह धारणा और कल्पना उन कवियों के संबंध में कुछ गलत नहीं है जो अपने ही भावों और हृदय के उद्‌गारों में निमग्न रहते हैं, लेकिन अगर हम संसार के महाकवियों को देखें तो उनमें से शायद एक आध को छोड़कर सभी जीवन की हलचल, जीवन की रंगारंगी, जीवन की भीड़भाड़, जीवन के प्रकार और आए दिन के व्यवहारों से घनिष्ठ संबंध रखने का सबूत देते हैं। इन महाकवियों की चेतना, कल्पना और उनका जीवन खान-पान नहीं होता। ये महाकवि ऊँचे कलाकार होते हुए भी बड़े सांसारिक और दुनियादार होते हैं। इनकी असाधारण प्रतिभा का भेद साधारण जीवन से उनके प्रेम और इस जीवन से उनके तादात्म्य में छुपा होता है। ये महाकवि दुनिया से अलग नहीं रहते और न दुनिया उनसे अलग रहती है। ये दुनिया में रहते हैं और दुनिया इनमें रहती है। ये दुनिया के होते हैं और दुनिया इनकी होती है। एक दिव्य अर्थ में ये महाकवि बड़े साधारण, बड़े मामूली लोग होते हैं। दुनिया उनसे हँसती-बोलती है और ये दुनिया से हँसते-बोलते हैं। दुनियावी जीवन में ये डूबे रहते हैं और इसी भवसागर में नहा-नहाकर और गोते लगा-लगाकर अमर कविता के मोती हमारे लिए निकाल लाते हैं।

नज़ीर अकबराबादी भी दुनिया के रंग में रँगे हुए एक महाकवि थे। उनकी कविताओं में रहती दुनिया हँसती-बोलती, जीती-जागती, चलती-फिरती और जीवन का त्योहार मनाती हुई नज़र आती है। नज़ीर की कविताओं में उनके समय का जीवन, हर स्तर, हर वर्ग, हर तरह, हर रंग, हर ढंग, हर अवस्था, हर स्थिति का जीवन इतने भरपूर ढंग से अपनी पूरी गतिशीलता के साथ और इतने स्वाभाविक और सजीव रूप में चित्रित हुआ है कि भाषा, संस्कृति, संप्रदाय, जाति-धर्म- सब भेद मिट गए हैं और नज़ीर एकमात्र ऐसे कवि माने गए हैं जिन्हें उर्दू और हिंदी वालों ने किसानों, मज़दूरों, मध्यमवर्ग, उच्च वर्ग, बच्चों-जवानों, बूढ़ों, स्त्रियों और पुरुषों - सबने समान रूप से अपनाया। राम-रहीम एक हों या अनेक, हिंदू-मुसलमान एक जाति हों या दो जातियाँ, हिंदी-उर्दू एक भाषा हों या दो भाषाएँ; सौ बातों की एक बात यह है कि सब भेद-भाव समेत जनता एक है और हमारा रंगारंग समाज एक अखंड अछेद और अभेद समाज है। इसका बोलता हुआ सबूत नज़ीर अकबराबादी की लगभग पचास हज़ार पंक्तियों में फैली हुई वो कविताएँ हैं जिनमें हमारे जीवन की चहकार सुनाई देती है।

नज़ीर का कोई कलाम या उनकी कोई बानी ऐसी नहीं जिसमें कुछ 'छल बल' न हो। कोई 'रँगीलापन' न हो और एक क़िस्म की 'ऐंड' मौजूद न हो। नज़ीर ने इस तमाम लक्षणों और गुणों के मेल को चुटकुलेबाजी कहा है। चुटकुलेबाज़ हमारे समाज का वह व्यक्ति है जो बच्चों से लेकर बूढ़ों तक, ग़रीबों से लेकर अमीरों तक हर उम्र और हर तबके की महफ़िल में अपनी जगह पैदा कर लेता है, जो कभी 'बारे ख़ातिर' नहीं, बल्कि हमेशा 'यारे शातिर' साबित होता है और जिसकी हस्ती तकल्लुफ और बनावट से बिलकुल पाक होती है। उसकी ज़िंदगी का आशावादी पहलू हमेशा सबकी नज़रों के सामने रहता है। वह खुद हँसे या न हँसे, लेकिन दूसरों के दिल की कली खिला देता है। वो एक अहला-गहला और चौंचाल, लेकिन अहानिकर व्यक्ति होता है कि उससे सब मुहब्बत करते हैं। मत-मतांतरों की संकीर्णता से वह हमेशा अलग रहता है। वह एक निहायत दिलचस्प क़िस्म का हँसमुख आदमी होता है जो दुनिया को दूसरों की निगाहों से देखने का ज़्यादा अभिलाषी होता है। समाज के अंदर अपने को जज़्ब करके अपने व्यक्तित्व को भी सामूहिक चीज़ बना देता है। दूसरों के साथ घुल-मिलकर ज़िंदगी बसर करना उसका लक्ष्य होता है और दिल पर चोटें खाने के बाद भी हर वक़्त मुसकराते रहना उसका स्वभाव और व्यवहार होता है। उसकी तबीयत की रंगीनी सीखी सिखाई चीज़ नहीं होती, बल्कि सरासर स्वाभाविक होती है और इसीलिए वह कभी मौके पर चूकता नहीं और होंठों पर आई हुई बात को रोकता नहीं। बोली-ठोली, ज़िला-जुगत, फब्ती, फ़िक़राबाज़ी और बात-से-बात पैदा करने की उसमें असाधारण क्षमता होती है। महफ़िल का जो रंग होता है उसी में वो डूब जाता है। ऐसा आदमी अज़ान और शंख, दोनों की आवाज़ों से मुहब्बत करता है। उसकी ज़िंदगी क़हक़हा, हमहमा, ज़िंदादिली की तसवीर होती है और उसकी मुसीबतें भी एक ऐसा रंगीन असर छोड़ जाती हैं कि उसकी मौत भी ज़िंदगी का नया अनुभव करा देती है।

विद्वान् समालोचक योरोपीय डॉक्टर फ़ेलन जिन्होंने उर्दू भाषा और साहित्य का गहरा अध्ययन किया था, कहते हैं कि नज़ीर ही एक शायर है जो अंग्रेज़ों की कसौटी पर सच्चा उतरता है। उसकी शायरी ने जनसाधारण के दिलों में राह की है, उसकी कविताएँ सड़कों, खेतों और गलियों में गाई जाती हैं। वह एक आज़ाद आदमी था। वो कुछ चाहता ही न था। सौभाग्य-दुर्भाग्य उसके लिए बराबर थे जैसा उसने खुद कहा है कि वो अपनी खाल में मस्त था। वह आला दर्जे का साहित्यिक चित्रकार और आविष्कारी, विचारक और जगत का दोस्त था। इनसानियत से उसकी गहरी हमदर्दी थी। वह हर चीज़ में खूबी पाता था।

अच्छे भी आदमी ही कहाते हैं ए नज़ीर
और सबमें जो बुरा है सो है वो भी आदमी

उसके दिल-ओ-दिमाग़ की सफ़ाई और उसकी तहरीर की

लताफ़त इस दर्जे की है कि जब वो कोई फ़हश (अश्लील) ख़याल भी पैदा करता है तो उस पर इस लताफ़त के साथ परदा डाल देता है कि उसकी अश्लीलता खटकती नहीं। इतना जानदार कलाम, इतना शोख़ और चंचल कलाम दुनिया के बहुत कम शायरों के यहाँ मिलता है। अंग्रेज़ी में ऐसा काम चॉसर और शेक्सपियर कर सके हैं। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि शब्दों को नये साँचे में ढाल देता है। वह हिंदुस्तान के इने-गिने सबसे बड़े यथार्थवादी कवियों में है।

डॉक्टर फ़ेलन की राय आप सुन चुके हैं। अब नज़ीर की बानी की कुछ और विशेषताएँ सुनिए। नज़ीर जीवन और प्रकृति के अध्ययन का बादशाह है। मसलन होली हिंदुओं का त्योहार है। जब नज़ीर होली को देखता है तो उसके सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अंशों पर निगाह डालता चला जाता है। बरसात का दृश्य देखिए। आसमान पर भूरे बादल, ऊदी बदलियाँ, काली घनघोर घटाएँ, पपीहे का ज़ोर, मोर का शोर, हवा का चलना, पेड़ों का लहलहाना, हरियाली से तमाम जंगल में मख़मली फ़र्श बिछ जाना, झीलों, तालाबों, डबरों का लबालब होना--सब चीज़ें ऐसी हैं जिनसे हम प्रभावित होते हैं। मगर नज़ीर और आगे बढ़ जाता है। वह मुहल्लों और मकानों की दीवारों में पड़ी हुई दरारों को भी देखता है। फिसलन की भी तसवीर खींचकर रख देता है। छतों का टपकना, मकानों का गिरना, धुआँ, उमस, मुफ़लिस, ग़रीब, हाथी सवार, पालकी नशीन, पियादा, सवार, नौकर, मालिक-- सबको फिसला देता है और कीचड़ में गिरने की ऐसी-ऐसी तसवीरें खेंचता है कि मज़ा आ जाता है। नज़ीर की कला और कल्पना के लिए कोई विषय तुच्छ नहीं था। जैसे हवा स्वतंत्र है वैसे ही नज़ीर भी कहीं बंद नहीं है। मच्छर, खटमल, साँप का बच्चा, गिलहरी, कबूतर, बये का बच्चा, पतंगबाजी, तैराकी, चूरन, खोंचेवाले, रीछ का बच्चा, तरबूज़, ककड़ी, छोटे मकान, बड़े मकान, नालों और नाबदानों से लेकर जमुना का विस्तार, कृष्ण की बाँसुरी, अनगिनत मेले, रंगारंग पेशे और व्यवसाय क्या है जिसे नज़ीर की क़लम ने सजीव करके नहीं दिखा दिया। जीवन से इस कवि का कितना अगाध प्रेम था ! हिंदू त्योहारों पर तो ऐसी कविताएँ हिंदी में भी कम ही मिलेंगी।

एक और बात कहने की है, लेकिन है बहुत सँभलकर कहने की। वो यह कि जो स्निग्धता, सुकुमारता, लालित्य, कल्पना की सूक्ष्म और नाजुक गति, जो बनाव और रचाव, जो नज़ाकतें और लताफ़तें, शैली की जो सजावटें, जो अलंकृत रूपरेखा हम अनेक महान साहित्यिकों में पाते हैं वह नज़ीर के यहाँ नहीं पाते। लेकिन यह बात ऐसी ही है कि जितनी सुसज्जित कला कालिदास और भवभूति की है उतनी आदिकवि वाल्मीकि की नहीं है। या फ़िरदौसी के यहाँ हाफ़िज़ की सतरंग कला नहीं है या चॉसर के यहाँ शेक्सपीयर का रस, रंग और संगीत नहीं है। या होमर के यहाँ मिलटन की बातें नहीं। या मलिक मुहम्मद जायसी के यहाँ तुलसीदास की सुकोमल कला नहीं। कला में ये अलंकार किसी भाषा के बहुत विकसित हो जाने के बाद पैदा होते हैं। एक उर्दू कवि कहता है :

वो लड़कपन के थे दिन और ये जवानी की बहार
पहले भी रुख़ पर तेरे तिल था मगर क़ातिल न था

नज़ीर की बानी के मुख पर जो तिल है वो अनीस, चकबस्त, अकबर, इक़बाल और जोश मलीहाबादी के कलाम के मुख पर क़ातिल बन गया है। नज़ीर ने उर्दू भाषा के बचपन या लड़कपन के दिनों में अपनी रचनाएँ की हैं। वह ठेठ उर्दू लिखता है। लेकिन ठेठपन और सादगी के बावजूद ये उर्दू कितनी जादूभरी है। दाग़ का शेर याद आता है -

भर दी हैं क्या अदाएँ उस शोख़ सीमतन में
एक टेढ़ सादगी में एक सीध बांकपन में

यही है नज़ीर की शैली और भाषा-कला। अंग्रेज़ी के आदिकवि चॉसर के बारे में उसके मरने के तीन सौ बरस बाद अपने समय के सबसे बड़े अंग्रेज़ी कवि और साहित्यकार ड्राइडेन ने कहा था कि यहाँ (चॉसर के यहाँ) हम सचमुच परमात्मा की देन या सृष्टि की प्रचुरता देखते हैं (Here indeed we have God's plenty). बिलकुल यही बात हम नज़ीर अकबराबादी के बारे में कह सकते हैं। और यह बात या इतनी बड़ी बात हम उन उर्दू कवियों के बारे में भी नहीं कह सकते जिनका अभी हमने नज़ीर के साथ नाम लिया है और जिन्होंने दृश्य चित्रण या दृश्य वर्णन में नज़ीर की रूपरेखाओं को और चमकाया या और काव्यात्मक बनाया। विषय प्रचुरता और वर्णन में अनेक अंशों और हिस्सों को कविता में उभारने का जहाँ तक संबंध है अनीस, हाली, अकबर, इक़बाल कोई नज़ीर की गर्द तक को नहीं पहुँचता। अगर नज़ीर के क़रीब कोई पहुँचता है तो 'जोश' मलीहाबादी। उर्दू के किसी कवि को मजमूई हैसियत से नज़ीर से बड़ा मानने या बड़ा बताने का साहस गंभीर समालोचक नहीं कर सकता। यह भी याद रखना चाहिए कि अनेक अवसरों पर नज़ीर विद्वत्तापूर्ण भाषा और शब्दावली या शैली में मीर, ग़ालिब, इक़बाल और 'जोश' से ज़रा भी नीचे या पीछे नहीं रहता। लेकिन उसकी दिव्य साधारणता प्रायः उसकी शैली को रंगारंग बोली-ठोली के स्तर से ऊपर नहीं उठने देती। नज़ीर की बानी, नज़ीर की कला, नज़ीर का काव्य-संसार एक कभी न समाप्त होने वाला अखंड रास-लीला है जिसमें बराबर अबीर, गुलाल, रंग, तरंग, थाप, झंकार दिखाई और सुनाई देते हैं। ऐसी सदाबहार और सदा सुहाग शायरी विश्व-साहित्य में बहुत अधिक नहीं मिलती।

कविता को जीवन की समालोचना बताया गया है। ये समालोचना प्रायः जीवन के चित्रण के रूप में होती है और समालोचनात्मक उक्तियाँ इस चित्रण में कहीं-कहीं और कभी-कभी आती हैं। नज़ीर महात्मा या दार्शनिक या ऋषि-मुनि की पगड़ी बाँधकर हमारे सामने नहीं आता। वह एक साधारण दोस्त, पड़ोसी और समकालीन नागरिक की हैसियत से हमसे बातें करता है। वो इनसानियत की कमज़ोरियों से हमदर्दी करता है। वो सहृदय मित्र बनकर हमारा मनोविनोद करते हुए जीवन की भीड़-भाड़ में हमारे गरदनों में हाथ डालकर हमें घसीट लाता है और हँसी-छेड़ में जीवन पर समालोचना भी कर जाता है। उसकी चुटकुलेबाजी में कभी नर्म और कभी तेज़ चुटकियाँ छुपी हुई होती हैं और इन्हीं चुटकियों में, चेतना की इसी

गुदगुदी में नज़ीर की जीवन समालोचना व्यक्त होती है। उसके यह हँसमुख सख्यभाव और व्यवहार, उसकी यह यारी उसके जीवन की समालोचना है। हम जितना महात्माओं से सीखते हैं उससे कहीं अधिक अपने जैसे साधारण लोगों से सीखते हैं। नज़ीर की असाधारण साधारणता, उसकी प्रतिभा की कसौटी और दर्पण है। यही मानवीय स्पर्श नज़ीर को हमारे सामूहिक जीवन का एक सजीव अंश बना देता है। नज़ीर शेक्सपीयर तो नहीं हैं, लेकिन उसी बिरादरी के शायर हैं। दोनों ने वही किया है जिसे शेक्सपीयर कहता है to hold the mirror up to nature अर्थात् प्रकृति को आईना दिखाना।

कहा जाता है कि मियाँ नज़ीर सन् 1735 ईस्वी में आगरे में पैदा हुए। जब उन्होंने होश सँभाला तो आगरे के अरबी-फ़ारसी के प्रसिद्ध शिक्षकों और आचार्यों से तालीम हासिल की। एक रवायत यह भी है कि नज़ीर आगरे में नहीं दिल्ली में पैदा हुए थे। यह वह जमाना था जब मुग़ल साम्राज्य का सितारा डूब रहा था। सन् 1757 में जब अहमदशाह अब्दाली ने चढ़ाई की तो नज़ीर 22-23 साल की उम्र में अपनी माँ और नानी के साथ दिल्ली छोड़कर अपने पुराने वतन आगरे में मिठाई वाले पुल के पास आ के आबाद हो गए। जवानी रंगरलियों में कटी। पचीसी, जुआ, गंजफा, चौसर, शतरंज, कबूतरबाजी, लाल लड़ाना, पतंगबाजी, तैराकी, लकड़ी या चटकी डाड़ या पटेबाजी और नज़रबाज़ी ये थे उनके जवानी के मशगले। हिंदू त्योहारों में बहुत दिलचस्पी लेते थे और दिल-ओ-जान से लुत्फ़ उठाते थे। ये वो वक़्त था कि हिंदू और मुसलमानों में कोई बेगानगी न थी। नज़ीर मुक़ामी सभ्यता और संस्कृति में रँग गए थे। जवानी ऐसे ही झमेलों और मेलों-ठेलों में गुज़री। एक औरत जिसका नाम मोती था जिसे नज़ीर मोती के नाम से याद करते हैं उसे दिल दे बैठे थे। जब वो 28 वर्ष के हुए तो जाटों ने आगरा लूट लिया और वहाँ अपना राज स्थापित करके जनता को बहुत सताया। नज़ीर भी लुट गए। अब रोज़ी कमाने की फ़िक्र हुई। विद्या की दौलत तो छिन नहीं सकती थी। मकतब पढ़ाने लगे। लाला विलास राय खत्री से राह-रस्म हो गई। उन्होंने नज़ीर को सिर-आँखों पर बिठाया और अपने बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने के लिए उन्हें सौंप दिया। लाला विलास राय खत्री का परिवार अब तक आगरे में आबाद है या आबाद रहा है।

मुहल्ला ताजगंज से टट्टू पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। टट्टू के चाबुक मारा तो एक राहगीर के लग गया। नज़ीर इतना पछताए कि उसी दिन से बे-चाबुक के टट्टू पर सवार होने लगे। नवाब वाजिदअली शाह ने उनके पास बहुत सा रुपया भेजकर बुलाया। इतने रुपये आने से उन्हें रात भर नींद न आई। कहने लगे कि अदना ताल्लुक़ से तो इतने तरद्दुद हैं जब पूरा ताल्लुक़ होगा तो खुदा जाने क्या हाल हो। फेंको इस रुपये को। रुपये वापस कर दिए और लखनऊ न गए।

मियाँ नज़ीर राह चलते नज़्में कहा करते थे। शहर आते हुए टटुआनी कुछ ऐसी सध गई थी कि किसी ने मियाँ को सलाम किया और वो ठहर गई। कुंजड़ा मिला, उसने कहा मियाँ ककड़ी पर भी कुछ कह दो। फ़कीर बोला कोई क़िस्सा कह दीजिए कि उसे गा-गा के भीख माँगूँ। एक बार चंद औरतों ने रोक लिया और तक़ाज़ा किया हम हमारे लिए कुछ कह दो। उन्होंने बहुत टाला, मगर वो काहे को मियाँ को छोड़तीं। मज़बूर होकर उनके नाम पूछे। एक ने कहा 'जमुना', दूसरी ने कहा 'गंगा'। नज़ीर बोले :

यारब मेरी दुआ को जल्दी क़बूल कीजे
जमुना में लगा बल्ली गंगा को पार कर दे

कनारी बाज़ार जाते हुए कोठे पर से एक रंडी ने कहा कि मियाँ हमको अपना कलाम सुनाओ। गाएँगे और कमायेंगे। नज़ीर ने फ़ौरन कहा :

लिखें हम ऐश की तख़्ती पै किस तरह ऐ जां
क़लम ज़मीन के ऊपर दवात कोठे पर

वो झेंपकर चुप हो गई।

मियाँ नज़ीर में नम्रता बहुत आ गई थी। जिस मजलिस में बैठते अपने शिष्टाचार के कारण चराग़ मालूम होते। अधेड़ उम्र में शादी कर ली थी और मोरी दरवाज़ा उठ आए थे जहाँ एक छोटा सा मकान बना लिया था। तमाम उम्र उसी में रहे और उसी में सुपुर्दे खाक़ हुए।

मीठे चावल और खिचड़ी बहुत पसंद थी। नीबू का अचार, गुलगुले, चिल्ले, फलों में मऊ का ख़रबूजा, आम, शरीफा, अपनी-अपनी फ़सिल पर शौक़ से खाते। दावत में कम जाते। एक रोज़ कुछ लोग उनके घर पहुँचे, कुंडी खटखटाई। थोड़ी देर में देखते क्या हैं कि मियाँ नज़ीर ने दरवाज़ा खोला तो तमाम बदन पर आटा और चोकर का गुबार लगा हुआ है। सबने पूछा मियाँ ख़ैर तो है ! बोले, तुम्हारी भावज बिगड़ बैठी हैं। आटा कौन पीसता ?

रोटी कौन पकाता ? सोचा खुद ही आटा पीसकर रोटी डाल लूँ कि इतने में तुम लोग आ गए। सबने कहा तुम अपना काम कर चुके, अब हम अपना काम किए देते हैं। सबने मिल-जुलकर खाना पकाया और खुद भी खाया। और 'रूठी भावज' यानी मियाँ नज़ीर की बीवी को मनाकर खिला-पिला दिया। सन् 1830 में जब नज़ीर 95 वर्ष के थे, उन पर फ़ालिज गिरा। अब मकतब पढ़ाना नामुमकिन हो गया। बेटे को बुलाया और कहा भइया अब तुम इस मकतबदारी का काम सँभालो, वरना कहाँ से गुज़ारा होगा। वो बोले कि मैंने गुलिस्तां बोस्तां से आगे फ़ारसी नहीं सीखी। कठिन किताबें कैसे पढ़ा सकूँगा। नज़ीर लड़खड़ाई हुई आवाज़ में बोले, जाओ मियाँ खुदा का नाम लो पढ़ाओ। ये पढ़ाने लगे और इस काम में सफल हुए। 16 अगस्त, 1830 को नज़ीर का देहांत हुआ। जनाज़े की नमाज़ दो मरतबे पढ़ाई गई। सुन्नियों ने अलग पढ़ी, शियों ने अलग। हज़ारहा हिंदू-मुसलमान ज़नाज़े में शरीक हुए। अपने मकान ही में दफन किए गए जहाँ सालाना उर्स होता था। गाना-बजाना होता था। और यह मेला रात भर होता था। अब भी होता है, लेकिन अब बहुत कमी पर है। भारत में जिस नये सांस्कृतिक जागरण के चिन्ह उभर रहे हैं उससे यह आशा बँधती है कि नज़ीर अकबराबादी का स्मारक उनकी कृतियों के अुनसार बनेगा और यह मेला और उत्सव हर साल हिंदी-उर्दू प्रेमी लाखों की संख्या में धूमधाम से मनाएंगे।

साभार : नज़ीर की बानी

हरि की तारीफ़

■ नज़ीर

मैं क्या-क्या वस्फ़ कहूँ यारो उस शाम बरन औतारी के
स्त्रीकिशन कन्हैया मुरलीधर मनमोहन कुंजबिहारी के
गोपाल मनोहर साँवलिया घनशाम अटल बनवारी के
नन्दलाल दुलारे सुन्दर छवि ब्रजचंद मुकुट झलकारी के
कर धूम लुटइय्या दधिमाखन रंछोर नवल गिरधारी के
बनकुंज फिरैय्या रास रचन सुखदाई कान्हमुरारी के
हर आन दिखाये रूप नये हर लीला न्यारी-न्यारी के
पत लाज रखइय्या दुःखभंजन हरभक्ती भक्ते अधारी के
नित हरिभज हरिभज रे बाबा जो हरि से ध्यान लगाते हैं
जो हरि की आसा रखते हैं हरि उनकी आस बजाते हैं

जो भगती हैं सो उनको तो नित हर का नाँव सहाता है
जिस ज्ञान में हरि से नेह बढ़े वो ज्ञान उन्हें खुश आता है
नित मन में हर-हर भजते हैं हर भजना उनको भाता है
सुख मन में उनके लाता है दुःख उनके जी से जाता है
मन उनका अपने सीने में दिन-रात भजन ठहराता है
हर नाम की सुमरन करते हैं मुख चैन उन्हें दिखलाता है
जो ध्यान बँधा है चाहत का वो उनका मन बहलाता है
दिल उनका हर-हर कहने से हर आन नया सुख पाता है
हरनाम के जपने से मन को खुश नेह जतन से रखते हैं
नित भक्त जतन में रहते हैं और काम भजन से रखते हैं

जो मन में अपने निश्चय कर हैं द्वारे हर के आन पड़े
हर वक़्त मगन हर आन खुशी कुछ सोच नहीं मन में लाते
हर नाम भजन की परवाह है और काम उसी से हैं रखते
है मन में हरि की याद लगी हर सुमरन में खुश रहते
कुछ ध्यान न ईधर-ऊधर का हर आसा पर हैं मन धरते
जिस काम से हरि का ध्यान रहे हैं काम वही हरदम करते
कुछ आन अटक जब पड़ती है मन बीच नहीं चिन्ता करते
नित आस लगाये रहते हैं मन भीतर हर की किरपा से
हर कारज में हर कृपा से वो मन में बात निहारत हैं
मनमोहन अपनी कृपा से नित उनके काज सँवारत हैं

स्त्रीकिशन की जो जो कृपा हैं कब मुझसे हो उनकी गिनती
हैं जितनी उनकी किरपाएँ इक ये भी किरपा है उनकी
मज़कूर करूँ जिस किरपा का वो मैंने है इस भाँत सुनी
जो इक बस्ती है जूनागढ़ वां रहते थे मेहता नरसी
थी नरसी की उस नगरी में दूकान बड़ी सर्राफ़ी की
ब्योपार बड़ा सर्राफ़ी का था बस्ता लेखा और बही
था रूप घटा और फ़र्श बिछा प्रतीत बहुत और साख बड़ी
थे मिलते-जुलते हर इक से और लोग थे उनसे बहुत खुशी
कुछ लेते थे कुछ देते थे और बहियाँ देखा करते थे
जो लेन-देन की बातें थीं फिर उनका लेखा करते थे

दिन कितने में फिर नरसी का सीकीश्न चरन से ध्यान लगा
जब भक्त हरी के कहलाये सब लेखा-जोखा भूल गया
सब काज बिसारे काम तजें हर नाँव भजन से मन लागा
जा बैठे साधु और सन्तों में नित सुनते रहते किशन कथा
था जो कुछ दूकां बीच रखा वो दरब जमा और पूँजी का
मधुपेम के होकर मतवाले सब साधुवों को हर नाँव दिया
हो बैठे हर के द्वारे पर सब मीत कुटुम से हाथ उठा
सब छोड़ बखेड़े दुनिया के नित हर सुमरन का ध्यान लगा
हर सुमिरन से जब ध्यान लगा फिर और किसी का ध्यान कहाँ
जब चाहत की दूकान हुई फिर पहली वो दूकान कहाँ

क्या काम किसी से उस मन को जिस मन को हर की आस लगी
फिर याद किसी की क्या उसको जिस मन से हर की सुमरन की
सुख-चैन से बैठे हर द्वारे सन्तोष मिला आनन्द हुई
ब्योपार हुआ जब चाहत का फिर कैसी लेखी और बही
नै कपड़े-लत्ते की परवा ना चिन्ता लुटिया-थाली की
जब मन को हर की पीत हुई फिर और ही कुछ परतीत हुई
धुन जितनी लेन और देन की थी सब मन को भूली और बिसरी
नित ध्यान लगा हर कृपा से हर आन खुशी और खुशवक़्ती
थी मन में हर की पीति भरी और थैली करतब रीते थे
कुछ फ़िक्र न था सन्देह न था हर नाम भरोसे जीते थे

नित मन में हर की आस धरे खुश रहते थे वां तो नरसी
इक बेटी आलख जन्मी थी सो दूर कहीं वो ब्याही थी
और बेटी के घर जब शादी वां ठहरी बालक होने की
तब आईं ईधर-ऊधर से सब नारियाँ उसके कुन्बे की
मिल बैठीं घर में ढोल बजा आनन्द खुशी की धूम मची
सब नाचीं गाईं आपस में है रीत जो शादी की होती
कुछ शादी की खुशवक़्ती थी कुछ सोंठ सोंठौरे की ठहरी
कुछ चमक-झमक थी अबरन की कुछ खूबी काजल-मेंहदी की
है रस्म यही घर बेटी के जब बालक मुँह दिखलाता है
तब उस बालक की छोछक का ननिहाल से भी कुछ आता है

वां नारियाँ जितनी बैठी थीं समधियाने में आ नरसी के
जब नरसी की वां बेटी से ये बोलीं हँसकर ताना दे
कुछ रीत नहीं आई अब तक ए लाल तिहारे मैके से
और दिल में थीं ये जानती सब वो क्या हैं और क्या भेजेंगे
तब बोली बेटी नरसी की उन नारियों के आकर आगे
''वो भगती हैं, बैरागी है, जो घर में था सो खो बैठे''
वो बोलीं ''कुछ तो लिख भेजो'' ये बोली ''क्या उनको लिखिए
कुछ उनके पास धरा होता तो आप ही वो भिजवा देते
जो चिट्ठी में लिख भेजोगे वो बाँच उसे पछतावेंगे
इक दमड़ी उनके पास नहीं वो छूछक क्या भिजवावेंगे''

उन नारियों को तो करनी थी उस वक़्त हँसी वां नरसी की
बुलवा के लिखइय्या जल्दी से ये बात उन्होंने लिखवा दी
''सामान हैं जितने छूछक के सब भेजो चिट्ठी पढ़ते ही
वो चीज़ें इतनी लिखवाईं बन आयें न उनसे एक कभी
कुछ जेठ-जेठाई का कहना कुछ बातें सास और ननदों की
कुछ देवरानी की बात लिखी कुछ उनकी जो-जो थे नेगी
थी एक टहलनी घर की जो सब बोलीं ''तू भी कुछ कह री''
वो बोली उनसे हँसकर ''वां मंगवाऊँ क्या मैं पत्थर जी''
वो लिखना क्या था वां लोगो मन चुहल हँसी पर धरना था
वां चीज़ों के लिख भेजने से शर्मिन्दा उनको करना था

जब चिट्ठी नरसी के पास गई तब बाँचते ही घबरा-से गये
पछताये मन में और कहा ये हो सकता है क्या मुझसे
ये एक नहीं बन आता है हैं जो-जो चिट्ठी बीच लिखे
है ये तो काम कठिन इस दम वाँ क्योंकर मेरी लाज रहे
वो भेजे इतनी चीज़ों को याँ कुछ भी हो मक़दूर जिसे
कुछ छोटी सी ये बात नहीं इस आन भला किससे कहिए
इस वक़्त बड़ी नाचारी है कुछ बन नहीं आता क्या कीजे
फिर ध्यान लगा हरि आसा पर और मन को धीरज अपने दिये
वो टूटी-सी इक गाड़ी थी चढ़ उस पर बेविसवास चले
सामान कुछ उनके पास न था रख श्याम की मन में आस चले

हरि नाम भरोसा रख मन में चल निकले वां से जब नरसी
गो थैले में कुछ चीज़ न थी पर मन में हरि की आसा थी
थी सर पर मैली-सी पगड़ी और चोली जामे की मसकी
कुछ ज़ाहिर में असबाब न था कुछ सूरत भी लजियायी थी
थे जाते रस्ते बीच चले थी आस लगी हरि किरपा की
कुछ इस दम मेरे पास नहीं वां चाहिएँ चीज़ें बहुतेरी
वाँ इतना कुछ लिख भेजा है मैं फ़िक्र करूँ अब किस-किसकी
जो ध्यान में अपने लाते थे कुछ बात नहीं बन आती थी
जब उस नगरी में जा पहुँचे सब बोले नरसी आये हैं
और लाने की जो कुछ बात कहो इक टूटी गाड़ी लाये हैं

कोई बात न आया पूछने को जब जाते देखा नरसी को
और जितना-जितना ध्यान किया कुछ पास न देखा उनके तो
जब बेटी ने ये बात सुनी कह भेजा क्या-क्या लाये हो
जो छूछक के सामान किये सब घर में जल्दी भिजवा दो
दो हँस-हँस अपने हाथों से यां देना है अब जिस-जिसको
ये बोले तब उस बेटी से हरि कृपा ऊपर ध्यान धरो
था पास हमारे क्या बेटी अब लाने को कुछ मत पूछो
कुछ ध्यान जो लाने का होवे सीकिशन कहो, सीकिशन कहो
इस आन जो हरि ने चाहा है इक पल में ठाठ बनावेंगे
है जो-जो यां से लिख भेजा इक आन में सब भिजवावेंगे

सीकिश्न भरोसे जब नरसी ये बात जो मुँह से कह बैठे
क्या देखते हैं वां उतरे हैं सब ठाठ वो उस जा आ पहुँचे
कुछ छकड़ों पर असबाब कसे कुछ भैंसों पर कुछ ऊँट लदे
थे हँसुली-खड़वे सोने के और ताशकी टोपी और कुर्ते
कुल कपड़ों पर अंबार हुए और ढेर किनारी गोटों के
कुछ गहने झमके चार तरफ़ कुछ झमके चीर झलाझल के
था नेग में देना एक जिसे सो उसको बीस और तीस दिये
अब वाह-वाह की धूम मची और शोर अहाहा के ठहरे
थी वो जो टहलनी उनके हाँ वो भूली जिस दम ध्यान पड़ी
सो उसके लिए फिर ऊपर से इक सोने की सिल आन पड़ी

वां जिस दम हरि की किरपा ने यों नरसी की तप लाज रखी
उस नगरी भीतर घर-घर में तब नरसी की तारीफ़ हुई
बहुतेरे आदर मान हुए और नाम बड़ाई की ठहरी
जो लिख भेजी थी ताने से हरि माया से वो साँच हुई
सब लोग कुटुम के शाद हुए खुश वक़्त हुई फिर बेटी भी
वो नेगी भी खुशहाल हुए तारीफ़ें कर-कर नरसी की
वां लोग सब आये देखने को और द्वारे ऊपर भीड़ लगी
ये ठाठ जो थे सब छूछक के सब बस्ती भीतर धूम पड़ी
जो हरि से काम रखें उनका फिर पूरा क्योंकर काम न हो
जो हरदम हरि का नाम भजें फिर क्योंकर हरि का नाम न हो

सीकिश्न ने वां जब पूरी की सब नरसी के मन की आसा
इक पल में कर दी दूर सभी जो उनके मन की थी चिन्ता
ये ऐसी छूछक ले जाते सो इनमें था मक़दूर ये क्या
ये आदर मान वहाँ पाते ये इनसे कब हो सकता था
जो हरि कृपा ने ठाठ किया वो एक न इनसे बन आता
ये इतनी जिसकी धूम मची सो ठाठ वो था हरि किरपा का
ये किरपा उन पर होती है जो रखते हैं हरि की आसा
हरि किरपा का जो वस्फ़ कहूँ वो बातें हैं सब ठीक बजा
हैं शाह 'नज़ीर' अब हरदम वो जो हरि के नित बलिहारी हैं
सीकिश्न कहो सीकिश्न कहो सीकिशन बड़े औतारी हैं

जन्म कन्हैयाजी

■ नज़ीर

है रीत जनम की यूँ होती जिस घर में बाला होता है
उस मंडल में हर मन भीतर सुख-चैन दो बाला होता है
सब बात बिथा की भूले हैं जब भोला-भाला होता है
आनंद मंदीले[1] बाजत हैं जब भवन उजाला होता है
यों नेक नछत्तर लेते हैं, इस दुनिया में संसार जनम
पर उनके और ही लच्छन हैं, जब लेते हैं औतार जनम

सुभ साअत से यों दुनिया में औतार गर्भ में आते हैं
जो नारद मुनि हैं ध्यान भले सब उनका भेद बताते हैं
वो नेक महूरत से जिस दम इस सिश्टि में जनमे जाते हैं
जो लीला रचनी होती है वो रूप ये जा दिखलाते हैं
यों देखने में और कहने में वो रूप तो बाले होते हैं
पर बाले ही पन में उनके उपकार निराले होते हैं

ये बात कही जो मैंने, अब यूँ उसको तू अब ध्यान लगा
है पंडित पुस्तक बीच लिखा, था कंस जो राजा मथुरा का
धन ढेर बहुत बल तेज निपट सामान अनेक और डील बड़ा
गज और तुरंग अच्छे नेके अंबारी हौदे ज़ीन सजा
जब बन-ठन ऊँचे हस्ती पर वो बाने बाँध निकलता था
सब साज झलाझल करता था और संग कटक दल चलता था

इक रोज़ जो अपनी भुज बल पर वो कंस बहुत मग़रूर हुआ
और हँसकर बोला दुनिया में है दूजा कौन बली मुझ-सा
इक बान लगाकर पर्वत को चाहूँ तो अभी दूँ पल में गिरा
इस देस के बड़ बल जितने हैं है कौन जो मुझसे होवे सिवा
जो दुष्ट कोई आ युद्ध करे कब मों[2] पर वा का वार चले
वो सामने मेरे ऐसा हो जूं चींटी हाथी पाँव तले

वो ऐसे-ऐसे कितने ही जो बोल गर्व के कहता था
सब लोग सभा के सुनते थे क्या ताब जो बोले कोई ज़रा
था एक पुरुख वो यूँ बोला ''तू भूला अपने बल पर क्या ?
जो तेरा मारनहारा है सो वो भी जनम अब लेवेगा
तू अपने बल पर ऐ मूरख इस आन अबस हंकार लिया
वो तुमको मार गिरावेगा यूँ जैसे भुंगा मार लिया''

ये बात सुनी जब कंस ने वां तब सुनकर उसके होश उड़े
भौ[3] मन के भीतर आन भरा और बोल गरब सगरे बिसरे
यों पूछा वो किस देश में है और कौन भवन आकर जन्मे
कौन उसके मात-पिता होवें जो पालें उसको चाहत से
वो बोला मथुरा नगरी में इक रोज़ जन्म वो पावेगा
जब होगा सयाना तब तुझको एक पल में मार गिरावेगा

ये बात सुनाई कंस को फिर और आठ लकीरें वां खींचीं
बसदेव पिता का नाँव कहा और देवकी माता ठहराईं
उन आठ लकीरों की बातें फिर कंस को उसने समझाईं
सब छोरा-छोरी देवकी के हैं जग में होते आठ यूँ हीं
बल तेज गरब में तूने तो सब कारज ज्ञान बिसारा है
जो पाछे रेखा खींची है वो तेरा मारन हारा है

इस बात को सुनकर कंस बहुत तब मन में अपने घबराया
जब नारद मुनि उसके पास गये तब उसने उनसे भेद कहा
तब नारद मुनि ने भी उसको कुछ और तरह से समझाया
फिर कंस को वां इस बात सिवा कुछ और न मारग बन आया
जो अपनी जान बचाने का कर सोच ये उसने फंद किया
बुलवा बसदेव और देवकी को इक मंदिर भीतर बंद किया

जब क़ैद किया उन दोनों को तब चौकीदार दिये बिठला
इक आन न निकसन पावें ये फिर उन सबको ये हुक्म दिया
सामान रसोई का जो था सब उसके पास दिया रखवा
और द्वार दिये उस मंदिर के तब भारी ताले भी जड़वा
हुशियार लगे यूँ रहने वां नित चौकी के देने हारे
क्या ताब जो कोठे छज्जे पर इक आन परिन्दा पर मारे

भौ बैठा था जो कंस के मन, वो भरकर नींद न सोता था
कुछ बात सुहाती ना उसको नित अपनी पलक भिगोता था
उस मन्दिर में उन दोनों के जब कोई बालक होता था
कंस आन उसे झट मारे था, मन मात-पिता का रोता था
इक मुद्दत तक उन दोनों का उस मंदिर में ये हाल रहा
जो बालक उनके घर जनमा, सो मारता वो चंडाल रहा

फिर आया वां इक वक़्त जो आये गर्भ में माँ के मनमोहन
गोपाल मनोहर मुरलीधर श्री किशन किशोरन कंवल नयन
घनश्याम मुरारी बनवारी गिरधारी सुन्दर श्याम बरन
प्रभुनाथ बिहारी कान लला सुखदाई जग के दुःख भंजन
जब साअत परगट होने की वां आई मुकुट धरैय्या की
अब आगे बात जनम की है जय बोलो किशन कन्हैया की

था नेक महीना भादों का और दिन बुध गिनती आठन की
फिर आधी रात हुई जिस दम और हुवा नच्छत्तर रोहनी भी
सुभ साअत नेक महूरत से वां जनमे आकर किश्न जभी
उस मंदिर की अंधियारी में जो और उजाली आन भरी
बसदेव से बोलीं देवकीजी मत डर भौ मन में घेर करो
इस बालक को तुम गोकुल में ले पहुँचो और मत देर करो

जो उसके तुम ले जाने में यां टुक भी देर लगाओगे
वो दुश्ट इसे भी मारेगा पचताते ही रह जाओगे
इस आन सँभलकर तुम इसको जो गोकुल में पहुँचाओगे
इस बात में ये फल पाओगे जो इसकी जान बचाओगे
वाँ गोकुल बासी जो इसको ले अपनी गोद सँभालेगा
कुछ नाम वो इसका रख लेगा और मेह दया से पालेगा

जो हाल ये वां जा पहुँचेगा तो इस का ज़ी बच जावेगा
जो कर्म लिखी है तो फिर भी मुख हमको आन दिखावेगा
जिस घर के बीच पलेगा ये वो घर हमको बतलावेगा
हम इससे मिलने जावेंगे ये हमसे मिलने आवेगा
ना काम हमें कुछ दावे से ना झगड़ा और परीखे से
जब देखने को मन भटकेगा सुख पावेंगे उसके देखे से

है आधी रात अभी तो हाँ ले जाओ इसे तुम हाल उधर
लपटा लो अपनी छाती से दे आवो जाके और के घर
मन बीच उन्हों के था डर ये दिन होवेगा तो कंस आकर
इक आन में उसको मारेगा रह जावेंगे हम आँसू भर
ये बात न थी मालूम उन्हें ये बालक जग निस्तारेगा
कब मार सकेगा कंस इसे, ये कंस को भी आपी मारेगा

जब देवकी ने बसुदेव से वां रो-रोकर तब ये बात कही
वो बोले क्योंकर ले जाऊँ है बाहर तो चौकी बैठी
और द्वार लगे हैं ताले कुल कुछ बात नहीं मेरे बस की
तब देवकी बोलीं ले जाओ मन ईशर की रख आस अभी
वो बालक को जब ले निकले सब्र सांकर टप-टप छूट गये
थे ताले जितने द्वार लगे उस आन झड़-झड़ टूट गये

जब आये चौकीदारों में तब वां भी ये सूरत देखी
सब सोते पाये उस साअत हर आन जो देते थे चौकी
जब सोता देखा उन सबको ही निर्भीक निकले वां से भी
फिर आये यमुना तीर जूंही फिर जमुना देखी बहुत चढ़ी
ये सोच हुआ मन बीच उन्हें पैर इस जल में कैसे धरिए
है रैन अंधेरी संग बालक इस बिपता में अब क्या करिए

यों मन में ठहरा फिर चलिए फिर आप ही मन मज़बूत हुआ
भगवान दया पर आस लगा वां जमुनाजी पर ध्यान धरा
यों जूं-जूं पाँव बढ़ाते थे वो पानी चढ़ता आता था
ये बात लगी जब होने वां बसदेव गये मन में घबरा
जब पाँव बढ़ाये बालक ने जो आपसे और भीगे जल में
जब जमुना ने पग चूम लिये जा पहुँचे पार वो इक पल में

जब आन बिराजे गोकुल में जब फाटक वां भी पाये खुले
तब वां से चलते-चलते वो फिर नंद के द्वारे आ पहुँचे
वां नद महल के द्वारे भी सब देखे पटपट दूर खड़े
जो चौकीवाले सोते थे अब कौन उन्हें रोके-टोके
जब बीच महल के जा पहुँचे सब सोते वां घरवाले थे
हर चार तरफ़ उजियाली थी जो साँझ में दीवे बाले थे

इक और अचंभा ये देखो जो रात जनम स्त्रीकिशन की थी
उस रात जसोदा के घर भी जन्मी थी यारो इक लड़की
वां सोते देख जसोदा को और बदली कर इस बालक की
उस लड़की को वो आप उठा ले निकले आये मथुरा जी
जब लड़की लाये मंदिर में सब ताले मंदिर लाग उठे
जो चौकी देने वाले थे वो भी फिर उस दम जाग उठे

जब भोर हुआ तब घबराकर सुध कंस ने ली उस मंदिर की
जब ताले खुलवा बीच गया तब लड़की जनमी इक देखी
ले हाथ फिराया चक्कर दे तो पटके वो बिन पटके ही
यों जैसे बिजली कौंदे है जब छूट हवा पर जा पहुँची
ये कहती निकली ''ऐ मूरख, क्या तूने सोच-विचारा है
वह जन्मता अब तो सीस मुकुट जो तेरा मारनहारा है''

जब कंस ने वां ये बात सुनी, मन बीच बहुत सा लजयाया
जो कारज होने वाला है वो टाले से कब है टलता
सौ फ़िक्र करौ सौ पेच करो सौ बात सुनाओ हासिल क्या
हर आन वही यां होता है जो माथे के है बीच लिखा
हैं कहते बुद्ध जिसे अब यां वो सोच बड़े ठहराती है
तक़दीर के आगे पर यारों तदबीर नहीं काम आती है

अब नंद के घर की बात सुनो वां एक अचंभा ये ठहरा
जो रात को जन्मी थी लड़की और भोर को देखा तो लड़का
घोड़नालें छूटीं नाच हुआ और नौबत का गुल शोर मचा
फिर किशन गरग ने नाम रखा सब कुन्बे के मिल बैठे आ
नंद और जसोदा और कवात करने वां हीरा फेर लगे
पकवान मिठाई मेवे के नर-नारी आगे ढेर लगे

सब नारी आईं गाँव की और पास पड़ोसिन आ बैठीं
कुछ ढोल मजीरे लाती थीं कुछ गीत ज़चा के गाती थीं
कुछ हरदम मुख इस बालक का बलिहारी होकर देख रहीं
कुछ थाल पंजीरी के रखतीं कुछ सोंठ सुंठौरा करती थीं
कुछ कहती थीं हम बैठे हैं नेग आज के दिन का लेने को
कुछ कहतीं हम तो आये हैं आनन्द बधावा देने को

कोई घुट्टी बैठी गर्म करे, कोई डाले असपंद और भूसी
कोई लाई हँसली और खड़वे कोई कुर्ता-टोपी मेवा-घी
कोई देखे रूप उस बालक का कोई माथा चूमे मेह भरी
कोई भौवों की तारीफ़ करे कोई आँखों की कोई पलकों की
कोई कहती उम्र बड़ी होवे ए बीर तुम्हारे बालक की
कोई कहती ब्याह बहू लाओ इस आस मुरादोंवाले की

कोई कहती बालक खूब हुआ ए बहना तेरी नेक रती
ये बाले उनको मिलते हैं जो दुनिया में हैं बड़ भागी
इस कुन्बे की भी शान बढ़ी और भाग बड़े इस घर के भी
ये बातें सबकी सुन-सुनकर ये बात जसोदा कहती थी
ये बीर ये बालक जो ऐसा अब मेरे घर में जन्मा है
कुछ और कहूँ मैं क्या तुमसे भगवान की मो पर कृपा है

थी कोने-कोने खुशवक़्ती और तबले ताल खटकते थे
कोई नाच रही कोई कूद रही कोई हँस-हँस के कुछ रूप सजे
हर तरफ़ आनन्दें थीं वां घर में नंद-जसोदा के
कुछ आँगन बीच बिराजे थीं कोई बैठी कोठे और छज्जे
सौ खूबी और खुशहाली ही दिखलाती थीं सामान खड़ी
सच बात है बालक होने की है दुनिया में आनन्द बड़ी

फिर और खुशी की बात हुई जब रीत हुई दीकान्दों की
रखवाई दूध की मटकी फिर और डाली हल्दी बहुतेरी
ये उस पर फेंके भर-भरकर वो उस पर डाले घड़ी-घड़ी
कोई पूछे मुख और बाहन को कोई सिखरनी फेंके और मठड़ी
इस विधि की भी रंगरलियों में रूप और हुआ नर-नारी का
और तन की अबरन यों भींगे जो रंग हो केसर क्यारी का

सुखमंडल में ये धूम मची और हर नेगी और जोगी भी
कुछ नाचें भांड भगीते भी कुछ हिजड़ें पावें बेल बड़ी
आनन्द बधावे बाज रहे नरसिंगे सरना और तुरुई
रंगीन सुनहरे पालने भी ले हाथ खड़े कितने पर भी
हर आन उठाती थीं मानिक क्या गिनती रूपै सोने की
नंद और जसोदा ने ऐसी की शादी बालक होने की

जो नेगी जोगी थे उनको उस आन निपट खुशहाल किया
पहराये बाने रेशम के और ज़र भी बख़्शा बहुतेरा
और जितने नाचनेवाले थे असबाब उन्हें भी खूब दिया
मेहमान जो घर आये थे सब उनका भी आदर-मान किया
दिन-रात छटी के होने तक, मन खुश दिल लोग-लुगाई का
भर थाल रूपै और मुहरें दीं, जब नेग चुकाया दाई का

नंद और जसोदा बालक का, वां हाथों छाँव में थे रखते
नित प्यार करें तन-मन वारें सुथरे अबरन गहने बनके
जी बहलाते मन परचाते और खूब खिलौने मँगवाते
हर आन झुलाते पालने में वो ईधर और ऊधर बैठे
कर याद 'नज़ीर' अब हर साअत उस पालने की और झूले की
आनन्द से बैठो चैन करो जै बोलो कान झंडोले की

संदर्भ : 1. बाजे का नाम 2. मुझ पर 3. भय

पदमावत : नागमती वियोग खंड

■ मलिक मुहम्मद जायसी

[344]

चढ़ा असाढ़ गँगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।१।
धूम स्याम धौरे घन धाए। सेत धुजा बगु पाँति देखाए।२।
खरग बीज चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरिसै घन घोरा।३।
अद्रा लाग बीज भुइँ लेई। मोहि पिय बिनु को आदर देई।४।
ओनै घटा आई चहुँ फेरी। कंत उबारु मदन हौं घेरी।५।
दादुर मोर कोकिला पीऊ। करहिं बेझ घट रहै न जीऊ।६।
पुख नछत्र सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाँह मँदिर को छावा।७।
जिन्ह घर कंता ते सुखी तिन्ह गारौ तिन्ह गर्ब।
कंत पियारा बाहिरें हम सुख भूला सर्ब।।३०।४।।

[345]

सावन बरिस मेह अति पानी। भरनि भरइ हौं बिरह झुरानी।१।
लागु पुनर्बसु पीउ न देखा। भै बाउरि कहँ कंत सरेखा।२।
रकत क आँसु परे भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।३।
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियर भुइँ कुसुंभि तन चोला।४।
हिय हिंडोल जस डोलै मोरा। बिरह झुलावै देइ झँकोरा।५।
बाट असूझ अथाह गँभीरा। जिउ बाउर भा भवै भँभीरा।६।
जग जल बूड़ि जहाँ लगि ताकी। मोर नाव खेवक बिनु थाकी।७।
परबत समुँद अगम बिच बन बेहड़ घन ढंख।
किमि करि भेटौं कंत तोहि ना मोहि पाँव न पंख।। ३०।५।।

[346]

भर भादौं दूभर अति भारी। कैसें भरौं रैनि अँधियारी।१।
मँदिल सून पिय अनतै बसा। सेज नाग भै धै धै डसा।२।
रहौं अकेलि गहें एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी।३।
चमकि बीज घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा।४।
बरिसै मघा झँकोरि झँकोरी। मोर दुइ नैन चुवहिं जसि ओरी।५।
पुरबा लाग पुहुमि जल पूरी। आक जवास भई हौं झूरी।६।
धनि सूखी भर भादौं माहाँ। अबहूँ आइ न सींचति नाहाँ।७।
जल थल भरे अपूरि सब गँगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिय टेक।।३०।६।।

[347]

लाग कुआर नीर जग घटा। अबहुँ आउ पिउ परभुमि लटा।१।
तोहि देखे पिउ पलुहै काया। उतरा चित्त फेरि करु माया।२।
उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा।३।
चित्रा मिंत मीन घर आवा। कोकिल पीउ पुकारत पावा।४।
स्वाति बुंद चातिक मुख परे। सीप समुंद्र मोँति लै भरै।५।
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरुरहिं खँजन देखाए।६।
भए अवगास कास बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहि भूले।७।
बिरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर।।३०।७।।

[348]

कातिक सरद चंद उजियारो। जग सीतल हौं बिरहैं जारी।१।
चौदह करा कीन्ह परगासू। जानहुँ जरें सब धरति अकासू।२।
तन मन सेज करै अगिडाहू। सब कहँ चाँद मोहिं होइ राहू।३।
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर नाहिंन कंत पियारा।४।
अबहूँ निठुर आव एहिं बारा। परब देवारी होइ संसारा।५।
सखि झूमक गावहिं अँग मोरी। हौं झूरौं बिछुरी जेहि जोरी।६।
जेहि घर पिउ सो मुनिवरा पूजा। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा।७।
सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेलि।
हौं का खेलौं कंत बिनु तेहिं रही छार सिर मेलि।।३०।८।।

[349]

अगहन देवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर दुख सो जाइ किमि काढ़ी।१।
अब धनि देवस बिरह भा राती। जरै बिरह ज्यों दीपक बाती।२।
काँपा हिया जनावा सिऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ।३।
घर घर चीर रचा सब काहूँ। मोर रूप रँग लै गा नाहूँ।४।
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै फिरै रँग सोई।५।
सियरि अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दगधै भै छारा।६।
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जरम करै भसमंतू।७।
पिय सौं कहेहु सँदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग।
सो धनि बिरहें जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग।।३०।९।।

[350]

पूस जाड़ थरथर तन काँपा। सुरुज जड़ाइ लंक दिसि तापा।१।
बिरह बाढ़ि भा दारुन सीऊ। कँपि कँपि मरौं लेहि हरि जीऊ।२।
कंत कहाँ हौं लागौं हियरें। पंथ अपार सूझ नहिं नियरें।३।
सौर सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी।४।
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं निसि बासर बिरह कोकिला।५।
रैनि अकेलि साथ नहि सखी। कैसें जिऔं बिछोही पँखी।६।
बिरह सैचान भँवै तन चाँड़ा। जीयत खाइ मुएँ नहिं छाँड़ा।७।
रकत ढरा माँसू गरा हाड़ मए सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई आइ समेटहु पंख।।३०।१०।।

[351]

लागेउ माँह परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला।१।
पहल पहल तन रुई जो झाँपै। हहलि हहलि अधिकौ हिय काँपै।२।
आइ सूर होइ तपु रे नाहाँ। तेहि बिनु जाड़ न छूटै माहाँ।३।
एहि मास उपजै रस मूलू। तूँ सो भँवर मोर जोबन फूलू।४।
नैन चुवहिं जस माँहुट नीरू। तेहि जल अंग लाग सर चीरू।५।
टूटहिं बुंद परहिं जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला।६।
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा। गियँ नहिं हार रही होइ डोरा।७।
तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई तन तिनुवर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल।।३०।११।।

[352]

फागुन पवन झँकोरै बहा। चौगुन सीउ जाइ किंमि सहा।१।
तन जस पियर पात भा मोरा। बिरह न रहै पवन होइ झोरा।२।
तरिवर झरै झरै बन ढाँखा। भइ अनपत्त फूल फर साखा।३।
करिन्ह बनाफति कीन्ह हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू।४।
फाग करहि सब चाँचरि जोरी। मोहिं जिय लाइ दीन्हि जसि होरी।५।
जौं पै पियहि जरत अस भावा। जरत मरत मोहि रोस न आवा।६।
रातिहु देवस इहै मन मोरें। लागौं कंत थार जेउँ तोरें।७।
यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाउ।।३०।१२।।

[353]

चैत बसंता होइ धमारी। मोहि लेखें संसार उजारी।१।
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै।२।
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीज मंजीठ टेसू बन राता।३।
मौरैं आँब फरैं अब लागे। अबहुँ सँवरि घर आउ सभागे।४।
सहस भाव फूली बनफती। मधुकर फिरे सँवरि मालती।५।
मो कहँ फूल भए जस काँटे। दिस्टि परत तन लागहिं चाँटे।६।
भर जोबन एहु नारँग साखा। सोवा बिरह अब जाइ न राखा।७।
घिरिनि परेवा आव जस आइ परहु पिय टूटि।
नारि पराएँ हाथ है तुम्ह बिनु पाव न छूटि।।३०।१३।।

[354]

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोला चीर चँदन भौ आगी।१।
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौहँ रथ हाँका।२।
जरत बजागिनि होउ पिय छाँहाँ। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ।३।
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि सों करु फुलवारी।४।
लागिउँ जरे जरे जस भारू। बहुरि जो भूँजसि तजौं न बारू।५।
सरवर हिया घटत नीति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई।६।
बिहरत हिया करहु पिय टेका। दिस्टि दवँगरा मेरवहु एका।७।
कँवल जो बिगसा मानसर छारहिं मिलै सुखाई।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौं पिय सींचहु आइ।।३०।१४।।

[355]

जेठ जरै जग बहै लुवारा। उठै बवंडर धिकै पहारा।१।
बिरह गाजि हनिवंत होइ जागा। लंका डाह करै तन लागा।२।
चारिहुँ पवन झँकोरै आगी। लंका डाहि पलंका लागी।३।
दहि भइ स्याम नदी कालिंदी। बिरह कि आगि कठिन असि मंदी।४।
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ मरौं दुख बाँधी।५।
अधजर भई माँसु तन सूखा। लागेउ बिरह काग होइ भूखा।६।
माँसु खाइ अब हाड़न्ह लागा। अबहूँ आउ आवत सुनि भागा।७।
परबत समुँद मेघ ससि दिनअर सहि न सकहिं यह आगि।
मुहमद सती सराहिअै जरै जो अस पिय लागि।।३०।१५।।

[356]

तपै लाग अब जेठ असाढ़ी। भै मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।१। तन तिनुवर भा झूरौं खरी। मैं बिरहा आगरि सिर परी।२। साँठि नाहिं लगि बात को पूँछा। बिनु जिय भएउ मूँज तन छूँछा।३। बंध नाहिं औ कंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।४। ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहि उठि सकै न थूनी।५। बरसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाँहाँ।६। कोरे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा ।७। अबहूँ दिस्टि मया करू छान्हिन तजु घर आउ। मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ।।३०।१६।।

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस, 62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26196356, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904, ईमेल : notowar@rediffmail.com, वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए